* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

विघ्नराज श्रीगणेश

भगवती श्रीराधाजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

वर्ष ८९

गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, सितम्बर २०१५ ई०

संख्या ९

पूर्ण संख्या १०६६

'श्रीराधारानी-चरन बंदौं बारंबार'

श्रीराधारानी-चरन बंदौं बारंबार।
जिन के कृपा-कटाच्छ तें रीझैं नंदकुमार॥
जिन के पद-रज-परस तें स्याम होयँ बेभान।
बंदौं तिन पद-रज-कननि मधुर रसनि के खान॥
जिन के दरसन हेतु नित बिकल रहत घनस्याम।
तिन चरननि में बसै मन मेरौ आठौं जाम॥
जिन पद-पंकज पर मधुप मोहन-दृग मँड़रात।
तिन की नित झाँकी करन मेरौ मन ललचात॥
'रा' अच्छर कौं सुनत ही मोहन होत बिभोर।
बसै निरंतर नाम सो 'राधा' नित मन मोर॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, सितम्बर २०१५ ई०

विषय-सूची

विषय — **पृष्ठ-संख्या**

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क } वार्षिक US$ 45 (₹2700) पंचवर्षीय US$ 225 (₹13500) { Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

देखो—जीवन क्षणभंगुर है, अभी है, क्षणभर बाद रहेगा या नहीं, पता नहीं। यहाँकी सभी वस्तुएँ ऐसी ही हैं, फिर किस मोहमें पड़कर इस छोटे-से जीवनके लिये इतनी गहरी नींव खोद रहे हो?

सोचो—कितने बड़े-बड़े धनी-मानी, ऐश्वर्यवान् और कीर्तिमान् पुरुष चले गये। क्या उनके साथ यहाँकी एक भी वस्तु गयी? फिर क्यों इन नश्वर वस्तुओंके संग्रहकी चिन्तामें अपना जीवन खो रहे हो?

विचार करो—रावण-से प्रतापी, हिरण्यकशिपु-से विश्वविजयी और सहस्रार्जुन-सरीखे हाथोंपर धरतीको तौलनेवाले वीर मौतके शिकार हो गये। फिर तुम किस बलपर, किस सिद्धिके लिये जगत्के प्रलोभनमें पड़े इधर-उधर भटक रहे हो?

याद करो—तुम्हारे पिता-पितामहका घरमें कितना रोब-दाब था। घरके सब लोग उनसे संकोच करते थे, डरते थे, उनकी आज्ञाके विरुद्ध कोई चूँतक नहीं करता था। आज कहाँ है उनका वह प्रभुत्व? उनकी कोई याद भी नहीं करता। यही दशा तुम्हारी भी होगी। फिर क्यों इस घरके पीछे पागल हो रहे हो?

देखो—तुम्हारा यह यौवन, यह रूप, यह सम्मान और यह धन सदा नहीं रहेगा। ये सभी वस्तुएँ नष्ट होनेवाली हैं और तुमसे निश्चय ही इनका वियोग होगा। फिर क्यों इनके लिये चक्करमें पड़े पिस रहे हो?

सोचो—यहाँके दो दिनके जीवनमें तुम्हारा बड़ा नाम हो गया या लोग तुम्हें बहुत मानने लगे तो क्या हुआ? तुम्हारा यह शरीर और यह नाम—जिसको लोग पूजते और मानते हैं, कितने दिनोंका है? फिर क्यों इस नाम-रूपकी प्रतिष्ठामें अपनेको नष्ट कर रहे हो?

विचार करो—तुम्हारा जीवन तभी सफल होगा, जब तुम इस जन्म-मृत्युके भयानक चक्रसे छूटकर अक्षय परम शान्तिको प्राप्त कर लोगे। वास्तवमें उसी सनातनी शान्तिको पानेके लिये ही तुमने मानव-शरीर धारण किया है। यदि तुम उस ओर नहीं चले तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ ही चला जायगा। समय जा रहा है, फिर तुम क्यों नहीं चेत करते?

याद करो—तुमने गर्भवासमें प्रतिज्ञा की थी और रो-रोकर प्रभुसे कहा था कि 'इस जीवनको मैं आपके स्मरण-भजनमें ही लगाऊँगा। दूसरा कोई काम करूँगा ही नहीं।' अब उस प्रतिज्ञाको भूलकर मिथ्या माया-ममतामें फँसकर फिर उसी भीषण गर्भवासकी यन्त्रणा भोगनेकी तैयारी क्यों कर रहे हो?

चेतो—शीघ्र चेतो। कहीं जीवनके दिन यों ही बीत गये तो फिर पछतानेसे कुछ भी काम नहीं निकलेगा। अरे, क्यों हाथ लगे स्वर्ण-सुयोगको खो रहे हो?

देखो—अबतक जो भूल हो गयी, सो हो गयी; उसके लिये रोनेसे कोई लाभ नहीं है। जीवनके जितने दिन बाकी हैं, उन्हींको दृढ़ संकल्प करके भगवान्के भजनमें लगाकर जीवनको सफल कर लो। ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलनेका। इस परम लाभको प्राप्त करनेमें क्यों इतना आलस्य कर रहे हो?

सोचो—जबतक शरीर स्वस्थ है, इन्द्रियाँ सशक्त हैं, मन प्रबुद्ध है तथा बुद्धि काम देती है, तभीतक तुम इन्हें अपने लक्ष्यकी ओर लगाकर जीवनको सफल करनेका प्रयत्न कर सकते हो। इन सबके असमर्थ होनेपर कुछ भी नहीं कर सकोगे। फिर क्यों देर कर रहे हो?

'शिव'

सारा समय परमोपयोगी बनानेका साधन

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यके समयके तीन विभाग माने जा सकते हैं— १. साधनकाल, २. व्यवहारकाल, ३. शयनकाल। इनमेंसे साधनकालको लोग सात्त्विक, व्यवहारकालको राजस और शयनकालको तामस मानते हैं, किंतु कल्याणके इच्छुक मनुष्योंको तो तीनों कालोंको ही परम सात्त्विक बनाना चाहिये। हमलोगोंको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि हमारा सारा-का-सारा समय उत्तम-से-उत्तम कार्यमें लगे। दूसरे लोगोंकी दृष्टिमें चाहे हमारे ये तीनों काल अलग-अलग प्रतीत हों, किंतु वास्तवमें हमारा सारा समय एक परमात्मामें ही लगा रहना चाहिये।

यह मनुष्य-शरीर अपने उद्धारके लिये मिला है या यों कहें कि परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है। अत: जिससे परमात्माकी प्राप्ति शीघ्रातिशीघ्र हो, उसी काममें हमारा सारा समय बीतना चाहिये। प्रत्येक समय हमारा परम साधन ही होता रहे। दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, निद्रा, आलस्य और प्रमादमें एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिये; क्योंकि ये सभी तामस हैं। ऐश-आराम, स्वाद-शौक, शृंगार, भोग-विलास, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा, कंचन, कामिनी, सम्पत्ति—इन सबमें जो ममता, आसक्ति, कामना आदि हैं, ये सभी राजस हैं। अत: इनके संसर्गमें भी अपना समय व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। प्रत्युत ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, सदाचार और सद्‌गुणोंके सेवनमें ही समय जाना चाहिये। एकान्तमें साधनकाल, व्यवहारकाल और शयनकाल सभी कालोंका सुधार विशेषरूपसे करना चाहिये।

१. एकान्तमें बैठकर अपने अधिकारके अनुसार पूजा-पाठ, जप-ध्यान, स्तुति-प्रार्थना, सन्ध्या-गायत्री, स्वाध्याय आदि जो कुछ भी साधन किया जाय, उसके अर्थ और भावको समझते हुए मन लगाकर श्रद्धा, विश्वास और प्रेमपूर्वक गुप्त और निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर करना चाहिये।

२. चलते-उठते-बैठते, खाते-पीते, न्यायोचित व्यवहार करते समय मनसे भगवान्‌के चरित्रोंको स्मरण करते हुए और उनका अनुकरण करते हुए एवं श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे भगवान्‌के नाम, रूप तथा गुण-प्रभावका चिन्तन करते हुए उनकी प्रसन्नताके अनुकूल ही सब व्यवहार करना चाहिये।

३. रात्रिमें शयनके समय सांसारिक संकल्पोंके प्रवाहसे रहित होकर मनमें भगवान्‌के तत्त्व-रहस्यको समझते हुए, भगवान्‌के गुण, प्रभाव, नाम, रूपके निष्कामभावपूर्वक चिन्तनका प्रवाह बहाते हुए ही शयन करना चाहिये।

मनकी आदत बिगड़ी हुई है। यह स्वाभाविक ही राजस और तामस भावों और पदार्थोंका चिन्तन करने लगता है। अत: इसकी प्रत्येक समय चौकसी (सँभाल) रखनी चाहिये। जैसे कोई सालभरका छोटा बच्चा चाकू, कैंची आदि कोई भी पदार्थ हाथमें आ जाता है तो उसे पकड़ लेता है; क्योंकि वह उसके परिणामको समझता नहीं है, किंतु माता उसे भय दिखलाकर, लोभ देकर या प्रेमसे समझाकर उससे कैंची, चाकू आदि छीन लेती है। इसी प्रकार साधक अपने मनको इस लोक और परलोकके दु:खोंका भय दिखलाकर, 'भक्ति, ज्ञान, वैराग्य रसमय—अमृतमय है'—ऐसा लोभ देकर या विवेकपूर्वक समझाकर राजस और तामस क्रियाओं, पदार्थों और भावोंसे हटा ले एवं परम कल्याणदायक, परम सात्त्विक उत्तम गुण, क्रिया, पदार्थ और भाव आदिमें लगाये।

कोई भी घटना, पदार्थ और परिस्थिति अपने मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरके अनुकूल या प्रतिकूल प्राप्त हो तो उसमें हर्ष-शोक, राग-द्वेष आदि विकारोंसे रहित रहना चाहिये। किसी भी घटना, पदार्थ या परिस्थितिके प्राप्त होनेपर ज्ञानयोगकी दृष्टिसे तो उसे स्वप्नवत् माने, भक्तिकी दृष्टिसे उसे भगवान्‌का विधान या लीला माने और कर्मयोगकी दृष्टिसे उसे अपने पूर्वकृत कर्मोंका फलरूप प्रारब्ध माने एवं ऐसा मानकर सदा निर्विकार रहे, किंतु यदि अपने साधनके विरुद्ध कोई पदार्थ या

परिस्थिति प्राप्त हो जाय तो उसका त्यागपूर्वक सदुपयोग करना चाहिये। जैसे अर्जुनने इन्द्रकी भेजी हुई उर्वशी अप्सराके काम-प्रस्तावका त्याग कर दिया था।

जिस समय अर्जुन इन्द्रपुरीमें रहकर अस्त्र-विद्या और गान्धर्व-विद्या सीख रहे थे, एक दिन इन्द्रने सभामें अर्जुनको उर्वशीकी ओर निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए पाया था, अत: अर्जुनको उर्वशीके प्रति आसक्त जानकर उन्होंने रात्रिके समय उनकी सेवाके लिये वहाँकी उस सर्वोच्च अप्सरा उर्वशीको उनके पास भेजा। उर्वशी अर्जुनके रूप और गुणोंपर पहलेसे ही मुग्ध थी। वह इन्द्रकी आज्ञासे खूब सज-धजकर रात्रिमें अर्जुनके पास गयी। अर्जुन उर्वशीको रात्रिमें अकेले इस प्रकार नि:संकोचभावसे अपने पास आयी देख सहम गये। उन्होंने शीलवश अपने नेत्र बन्द कर लिये और उर्वशीको माताकी भाँति प्रणाम किया। उर्वशी यह देखकर दंग रह गयी। उसे अर्जुनसे इस प्रकारके व्यवहारकी आशा नहीं थी। उसने अर्जुनके प्रति अपना मनोभाव स्पष्ट प्रकट किया। तब अर्जुन अत्यन्त लज्जित हो गये और हाथोंसे दोनों कान मूँदकर बोले—'देवि! तुम जैसी बात कह रही हो, उसे सुनना भी मेरे लिये बड़े दु:खका विषय है। मैंने जो देवसभामें तुम्हारी ओर एकटक दृष्टिसे देखा था, उसका एक विशेष कारण था। वह यह कि 'तुम्हीं हमारे पूरुवंशकी जननी हो'—इस पूज्यभावको लेकर ही मैंने वहाँ तुम्हें देखा था। अनघे! मेरी दृष्टिमें कुन्ती, माद्री और शचीका जो स्थान है, वही तुम्हारा भी है। तुम पूरुवंशकी जननी होनेके कारण आज मेरे लिये परम गुरुस्वरूप हो। वरवर्णिनि! मैं तुम्हारे चरणोंमें मस्तक रखकर तुम्हारी शरण हूँ। तुम लौट जाओ। मेरी दृष्टिमें तुम माताके समान पूजनीया हो और तुम्हें पुत्रके समान मानकर मेरी रक्षा करनी चाहिये*।'

यह सुनकर उर्वशी क्रोधित हो गयी और अर्जुनको शाप देते हुए बोली—'अर्जुन! देवराज इन्द्रके कहनेसे मैं तुम्हारे घरपर आयी और कामबाणसे घायल हो रही हूँ, फिर भी तुम मेरा आदर नहीं करते। अत: तुम्हें स्त्रियोंके बीचमें सम्मानरहित होकर नर्तकी बनकर रहना पड़ेगा। तुम नपुंसक कहलाओगे और क्लीबवत् विचरण करोगे।'

जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने अर्जुनकी प्रशंसा की और कहा—'यह शाप तुम्हें वरदानका काम देगा। अज्ञातवासके समय तुम्हारे छिपनेमें सहायक होगा। उसके बाद तुम्हें पुन: पुरुषत्व प्राप्त हो जायगा।'

ध्यान देना चाहिये कि अर्जुनने उर्वशीका शाप तो स्वीकार कर लिया, किंतु उसके प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। अर्जुनका यह ब्रह्मचर्यपालन और त्यागका व्यवहार बहुत ही उच्च आदर्श है।

हमलोगोंको इस प्रकारकी घटना प्राप्त होनेपर उसे भगवान्‌की भेजी हुई समझकर अर्जुनकी भाँति उसका त्यागपूर्वक सदुपयोग करना चाहिये। यद्यपि भगवान् अनुकूल या प्रतिकूल पदार्थ भेजकर जो कुछ करते हैं, हमारे हितके लिये ही करते हैं, किंतु वे हमारी परीक्षा भी लेते रहते हैं। जैसे अध्यापक विद्यार्थीकी योग्यताको जानता हुआ भी उसकी उन्नतिके लिये उसकी परीक्षा लेता रहता है, वैसे ही सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् भगवान् साधकके हितके उद्देश्यसे उसे साधनमें दृढ़ बनानेके लिये अनुकूल-प्रतिकूल घटना और पदार्थ भेजकर परीक्षा लेते रहते हैं। उन सबमें साधकको विकाररहित रहना चाहिये।

परेच्छा या अनिच्छासे मनके अनुकूल या प्रतिकूल कोई भी घटना या पदार्थ प्राप्त हो तो उसे भगवान्‌का विधान या प्रारब्ध मानकर सन्तुष्ट होना चाहिये, विचलित नहीं होना चाहिये और यदि वह शास्त्रविपरीत हो तो उसका नीतिके अनुसार तिरस्कार कर सकते हैं; क्योंकि वे जो पदार्थ हमें प्राप्त हो रहे हैं, उनमें जब भगवान्‌का विधान है तो हमारे हृदयमें जो शास्त्रविरुद्ध अनुचित पदार्थके लिये विरोध करनेका भाव आता है, वह भी

* यथा कुन्ती च माद्री च शची चैव ममानघे। तथा च वंशजननी त्वं हि मेऽद्य गरीयसी॥
गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोऽस्मि पादौ ते वरवर्णिनि। त्वं हि मे मातृवत् पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत् त्वया॥
(महा० वन० ४६। ४६-४७)

तो भगवान्‌की ही प्रेरणा है। जैसे अर्जुनको भगवान् जगह-जगह युद्ध करनेकी आज्ञा देते हैं, किंतु उस आज्ञाके साथ ही समभाव रखनेके लिये भी प्रेरणा करते हैं—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(गीता २। ३८)

'जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःख समान समझकर उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा।'

अनुकूल पदार्थ या घटनाके प्राप्त होनेपर हर्षित होना, उसमें प्रीति करना भी विकार है और प्रतिकूल घटनामें द्वेष, वैर, भय, ईर्ष्या, शोक आदि अनेक प्रकारके विकार होते ही रहते हैं, किंतु जो इन सबमें विकाररहित रहे, वही सर्वोत्तम है। जैसे भक्त प्रह्लादको मारनेके लिये उनके पिता हिरण्यकशिपुने उनपर अनेक अत्याचार किये—बड़े-बड़े मतवाले हाथियोंसे कुचलवाया, विषधर सर्पोंसे डँसवाया, पुरोहितोंसे कृत्याका प्रयोग करवाया, पहाड़की चोटीसे नीचे डलवाया, शम्बरासुरसे अनेक प्रकारकी मायाका प्रयोग करवाया, अँधेरी कोठरियोंमें बन्द करवाया, विष पिलाया, खाना बन्द करवा दिया, बर्फीली जगह, दहकती हुई आग और समुद्रमें बारी-बारीसे डलवाया, परंतु किसी भी उपायसे वह प्रह्लादको मार न सका। उसके सारे प्रहार निष्फल हो गये। भक्त प्रह्लादके चित्तमें भी उन सबका कोई असर नहीं हुआ। वे तो उन सबमें निर्विकार ही रहे; क्योंकि उनका सबमें भगवद्भाव था। प्रत्युत जब पुरोहितोंने उन्हें मारनेके लिये कृत्या उत्पन्न करके उनपर प्रयोग किया और वह कृत्या उन्हें मारनेमें समर्थ न हो सकी, तब उसने उन पुरोहितोंको ही मार डाला। यह देखकर दयापरवश हो प्रह्लादजी भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे—

यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम्।
चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥
ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनः।
यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि॥
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित्।
यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः॥

(श्रीविष्णुपुराण १। १८। ४१—४३)

'प्रभो! यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय श्रीविष्णु भगवान्‌को अपने विपक्षियोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे विष दिया, जिन्होंने आगमें जलाया, जिन्होंने दिग्गजोंसे पीड़ित कराया और जिन्होंने सर्पोंसे डँसवाया—उन सबके प्रति यदि मैं समान मित्रभावसे रहा हूँ और मेरी कभी पापबुद्धि नहीं हुई है तो उस सत्यके प्रभावसे ये दैत्यपुरोहित जी उठें।'

ऐसा कहकर उनके स्पर्श करते ही वे ब्राह्मण स्वस्थ होकर उठ बैठे और उन्होंने प्रह्लादजीको आशीर्वाद दिया।

इसपर हिरण्यकशिपुने प्रह्लादजीसे उनके इस प्रभावका कारण पूछा, तब उन्होंने बतलाया—

न मन्त्रादिकृतं तात न च नैसर्गिको मम।
प्रभाव एष सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि॥
अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा।
तस्य पापागमस्तात हेत्वभावान्न विद्यते॥

(श्रीविष्णुपुराण १। १९। ४-५)

'पिताजी! मेरा यह प्रभाव न तो मन्त्रादिजनित है और न स्वाभाविक ही है, प्रत्युत जिस-जिसके हृदयमें श्रीअच्युतभगवान्‌का निवास होता है, उसके लिये यह सामान्य बात है। जो मनुष्य अपने समान दूसरोंका बुरा नहीं सोचता, तात! कोई कारण न रहनेसे उसका भी कभी बुरा नहीं होता।'

प्रह्लादजीकी भक्तिके कारण जब भगवान् प्रकट हुए, तब उन्होंने प्रह्लादजीसे वर माँगनेके लिये बार-बार कहा, फिर भी उन्होंने भगवान्‌से किसी बातके लिये भी प्रार्थना नहीं की, किंतु पिताके लिये प्रार्थना की कि 'पिताने आपके प्रभावको न जानकर आपकी बड़ी निन्दा की है और आपकी भक्ति करनेके कारण मुझसे भी द्रोह किया है। यद्यपि वे आपकी दृष्टि पड़नेसे ही पवित्र हो गये, फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उस महान्

दोषसे मेरे पिता पवित्र हो जायँ।' इसपर भगवान्ने कहा—'तुम्हारे पिता पवित्र हो गये, इसमें तो बात ही क्या है, वे अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके पितरोंके साथ तर गये; क्योंकि तुम्हारे-जैसा कुलको पवित्र करनेवाला पुत्र उन्हें प्राप्त हुआ है।'

भक्त प्रह्लाद भगवान्के किये हुए विधानमें आनन्द मान रहे हैं—केवल यही नहीं, प्रत्युत उनमें यह विशेष बात है कि जिन्होंने उनके विपरीत आचरण किया, उनका भी उन्होंने हित ही किया। अत: मनुष्यको चाहिये कि वह किसीसे भी न द्वेष करे, न किसीका बुरा करे, न किसीका बुरा चाहे, प्रत्युत उसका हित ही करे। अपनेपर अत्याचार करनेवाले मनुष्यकी बुद्धिके सुधारके लिये या उसके कल्याणके लिये भगवान्से याचना की जाय तो वह याचना भी सकामकी गणनामें नहीं है।

इसी प्रकार दूसरा कोई हमपर अत्याचार करने आ रहा हो और हमारा कोई हितैषी हमारे हितके लिये अत्याचारीको रोकता हो, तब भी हमें तो उस अत्याचारीका हित ही करना चाहिये। जैसे—

जब पाण्डव द्वैतवनमें थे, घोषयात्राके बहाने राजा दुर्योधन अपने मन्त्रियों, भाइयों, रनिवासकी स्त्रियों तथा बहुत बड़ी सेनाको साथ लेकर पाण्डवोंको अपना वैभव दिखलाकर दुखी करनेके उद्देश्यसे उस वनमें गया। वह उस सरोवरके तटपर पहुँचा। सरोवरको पहलेसे ही गन्धर्वोंने घेर रखा था। अत: उनके साथ दुर्योधनका युद्ध हुआ। उसमें गन्धर्वोंकी विजय हो गयी और उन्होंने रानियोंसहित दुर्योधनको कैद कर लिया। तब उसके मन्त्रिगण पाण्डवोंकी शरणमें गये। जब महाराज युधिष्ठिरको यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने भाइयोंसे कहा—'कौरव इस समय भारी संकटमें पड़े हुए हैं। भाई-बन्धुओंमें मतभेद, लड़ाई-झगड़े तो होते ही रहते हैं, कभी-कभी परस्पर वैर भी बँध जाता है, पर इससे अपनापन नष्ट नहीं होता। शरणागतोंकी रक्षा करने और कुलकी लाज बचानेके लिये तुमलोग शीघ्र गन्धर्वोंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाओ एवं उनके द्वारा पकड़े हुए राजा दुर्योधनको छुड़ा लाओ।' महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञा होनेपर अर्जुनने प्रतिज्ञा की कि 'यदि गन्धर्वलोग समझाने-बुझानेसे कौरवोंको नहीं छोड़ेंगे तो यह पृथ्वी आज गन्धर्वराजका रक्त पीयेगी।'

फिर भीमसेन आदि सभी गन्धर्वोंसे युद्ध करने गये। अर्जुनने अपने प्रिय मित्र चित्रसेन गन्धर्वको युद्धमें परास्त कर दिया। उस समय अर्जुनने चित्रसेनसे दुर्योधनको कैद करनेका कारण पूछा और उसे छोड़ देनेके लिये कहा। तब चित्रसेन बोला—'पाण्डवोंको दु:ख देनेका दुर्योधनका भाव जानकर देवराज इन्द्रने ही मुझे यहाँ भेजा है। इस दुर्योधनने धर्मराज युधिष्ठिरको और द्रौपदीको बड़ा धोखा दिया है, इसे छोड़ना उचित नहीं है।' पर अर्जुनने कहा—'यदि तुम हमारा प्रिय करना चाहते हो तो धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार इसे छोड़ दो।' तब चित्रसेनने रानियोंसहित दुर्योधनको छोड़ दिया।

इस प्रसंगमें महाराज युधिष्ठिरका बुराई करनेवालेके साथ भी भलाई करना—यह बहुत ही उत्तम व्यवहार है। उनके इस चरित्रसे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि अपने साथ कोई असद्-व्यवहार करे तो हम उसका भी हित ही करें।

मनुष्यको अपना यह उद्देश्य बना लेना चाहिये कि सबके हितके लिये अपने तन, मन, धनके द्वारा निष्कामभावसे सबकी सेवा करना। पर किसीसे सेवा करवाना नहीं, किंतु कहीं न्यायसे प्राप्त हो जाय और सेवा न करानेसे किसीको दु:ख होता हो तथा वह कार्य धर्मानुकूल हो तो उसके हितके लिये ही वह सेवा स्वीकार कर लेना दोष नहीं है। कोई भी व्यक्ति हमसे मिलने आ गया या कोई न्याययुक्त कार्य आकर प्राप्त हो गया तो उस कार्यको भी निष्कामभावसे भगवान्की प्रसन्नताके लिये तत्परताके साथ अहंकार और स्वार्थसे रहित होकर करना चाहिये। ऐसा करनेपर सभी कार्य साधनके रूपमें परिणत हो सकते हैं। जैसे एकान्तमें रहकर भजन-ध्यान, स्वाध्याय, मनन आदि करना साधन है, इसी प्रकार कोई मनुष्य चोरी, डकैती, बीमारी आदि आपत्तिसे ग्रस्त हो गया हो, या कहीं आग लग गयी हो, अतिवृष्टिके कारण बाढ़ आ गयी हो अथवा भूकम्प,

महामारी, अकाल हो गया हो और उसमें पशु, पक्षी, मनुष्य आदि सभी आपत्तिमें पड़ गये हों तो वहाँ अपनी शक्तिके अनुसार तन, मन, धन लगाकर निरभिमान तथा निष्कामभावसे उनकी सेवा करना भजन-ध्यानसे कम साधन नहीं है।

साधनमें भाव ही प्रधान है, क्रिया प्रधान नहीं है। अच्छी-से-अच्छी क्रिया भी यदि भाव बुरा है तो वह नरकमें ले जा सकती है। जैसे, जप-ध्यान, पूजा-पाठ, स्तुति-प्रार्थना, अनुष्ठान आदि अच्छी क्रियाएँ भी यदि किसीके अनिष्ट या मारण-उच्चाटनके लिये की जायँ तो वे भावदूषित होनेके कारण नरकदायिनी हो जाती हैं। इसी प्रकार नाली साफ करना, झाड़ू लगाना, पाखाना-पेशाबघर साफ करना—जैसी क्रिया देखनेमें तो बहुत नीची श्रेणीकी है, किंतु करनेवाला व्यक्ति संसारके हितके उद्देश्यसे दुखी मनुष्योंको सुख पहुँचानेके लिये, लोगोंका स्वास्थ्य ठीक रहे इस दृष्टिसे अथवा जिसके कोई करनेवाला नहीं है, ऐसे अपरिचित अनाथकी सेवाकी दृष्टिसे अभिमान और स्वार्थको त्यागकर भगवत्प्रीत्यर्थ धैर्य और उत्साहसे करे तो उसके लिये वह छोटे-से-छोटा कार्य भी कल्याण करनेवाला हो जाता है। इसी तरह न्यायसे कोई-सा भी कार्य आकर प्राप्त हो जाय और उस कार्यको अभिमान तथा स्वार्थसे रहित होकर केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किया जाय तो वह छोटे-से-छोटा कार्य भी कल्याण देनेवाला हो जाता है।

इसलिये साधकको अपने मनके सम्मुख भगवान्‌को रखकर उनकी प्रसन्नताके लिये उनके रुख, मन और सिद्धान्तके अनुसार धैर्य और उत्साहसे युक्त हो तत्परतापूर्वक बड़े चावसे कार्य करना चाहिये। इस प्रकार कार्य करनेवाले साधकको कार्यकी असिद्धिमें या झंझटसे भरे कार्योंमें भी कभी मनमें उकताहट, घबराहट या थकावट आदि कुछ भी नहीं होती। प्रत्युत प्रत्येक समय प्रसन्नता और शान्ति रहती है। तत्त्वज्ञ महापुरुषोंका तो यह स्वभावसिद्ध है और साधकके लिये वही आदर्श साधन है। साधकके चित्तमें भी जो प्रसन्नता और शान्ति है, वह भगवान्‌की कृपा एवं प्रसन्नतासे ही है तथा दूसरे प्राणियोंकी प्रसन्नतासे जो प्रसन्नता है, वह भी एक बहुत ही उत्तम भाव है। अतः वह भी प्रकारान्तरसे भगवान्‌की प्रसन्नताके ही समान है; क्योंकि भगवान् ही सारे प्राणियोंकी आत्मा हैं। इसलिये सबकी प्रसन्नता भगवान्‌की ही प्रसन्नता है, किंतु इसमें अपने उत्तम कार्यके कारण जो मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा होती है, उसे लेकर यदि चित्तमें प्रसन्नता होती है तो वह राजसी है और निष्कामभावसे हमारा अन्तःकरण शुद्ध होगा—इस भावको लेकर जो प्रसन्नता है, वह सात्त्विकी है तथा सबका परम हित ही मेरा परम हित है—इस भावमें भी मुक्तिकी इच्छा है, अतः यह भी अन्तःकरण-शुद्धिकी इच्छाकी भाँति सात्त्विक भाव ही है, किंतु मुक्तिकी इच्छा भी न रहकर, किसी भी हेतुको न लेकर जो भगवान्‌की प्रसन्नतासे ही प्रसन्नता है, वह परम सात्त्विकी है अर्थात् सात्त्विकसे भी परेकी वस्तु है।

इस प्रकार साधन करनेवाले मनुष्यसे यदि कोई कहे कि आपके चित्तमें जो प्रसन्नता-शान्ति रहती है, धैर्य-उत्साह रहता है तथा थकावट, उकताहट या और कोई भी हर्ष-शोक, राग-द्वेषादि विकार नहीं होते, इसमें क्या कारण है, तो उसमें साधकको यही मानना और यही उत्तर देना चाहिये कि यह भगवान्‌की कृपा है। अतएव अपने ऊपर भगवान्‌की कृपा समझते हुए भगवान्‌को प्रत्येक समय अपने मनके सामने रखकर भगवान्‌के रुख, मन और सिद्धान्तका ध्यान करता रहे। यदि कहें कि भगवान्‌के रुखका हमें कैसे पता लगे तो इसका उत्तर यह है कि सेवा-भावके प्रतापसे साधकको उसी प्रकार भगवान्‌के रुखका पता लगता रहता है, जैसे पतिव्रता स्त्रीको सेवाभावके कारण पतिके रुखका पता लगता रहता है। इसलिये जिसमें भगवान् प्रसन्न हों, जो भगवान्‌के मन और सिद्धान्तके अनुकूल हो, वही कार्य करना चाहिये, फिर अप्रसन्नता, अशान्ति, दुःख, उकताहट, थकावट आदि तथा अन्य किसी प्रकारके विकार नहीं हो सकते। इस प्रकार साधन करनेसे परमात्माकी प्राप्ति सहज और शीघ्र हो सकती है।

अनन्तमें निवास

(श्रीब्रजमोहनजी मिहिर)

नीलोज्ज्वल आकाश असीम है। प्रकृतिकी शोभा मनोरम है। ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ हम विस्तृत आकाशको न देखते हों। जहाँ देखिये, वहीं इसकी शोभाकी अनोखी छटा फैली हुई है। प्रकृतिके ऐसे अनुपम दृश्यको देखकर हम मुग्ध हो जाते हैं। हमारा रोम-रोम आनन्दमें निमग्न हो जाता है। ऐसी सौन्दर्यशालिनी आनन्दप्रदात्री प्रकृतिके बीच रहकर हम आनन्दकी चर्चा न करें तो और किसकी करें, लेकिन इसके साथ थोड़ी कठिनता भी है। हमारे बाहर प्रकृतिका स्थूल सौन्दर्य है। हमें भाँति-भाँतिके सुन्दर शरीर, अनेक प्रकारकी विचित्र वस्तुएँ अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं, लेकिन हमारे पास सूक्ष्म आनन्द भी है, जो स्थूल सौन्दर्यसे कहीं अधिक आकर्षक है। स्थूल वस्तुको हम देखते हैं, समझते नहीं, इसलिये उसकी ओर हमारा मन शीघ्र दौड़ जाता है। सूक्ष्म वस्तु मनके अन्दर समाहित रहती है। उसमें निवास करनेके लिये समझकी आवश्यकता होती है, स्थूल पदार्थोंसे मनको हटानेकी आवश्यकता होती है। सूक्ष्ममें निवास करनेके लिये केवल एक ही उपाय है कि आप अपनेको बिलकुल भूल जायँ और सदा एक-से प्रतीत होनेवाले आन्तरिक आनन्दमें डूब जायँ। ऐसा नहीं है कि हममेंसे कोई इसपर विश्वास न करता हो, लेकिन कुछ लोगोंमें इसे प्राप्त कर लेनेकी लगन अधिक होती है। जिनमें लगनकी कमी है, उनके लिये भी एक ऐसा समय आयेगा, जब वे अपने अन्दर उस आवाजको सुनेंगे और उसका अनुसरण करेंगे। इस आवाजको सुनकर ऐसा हो नहीं सकता कि आप माया-मोहका त्याग न कर दें। यही हुआ है और यही हो रहा है। यह आज्ञा समयपर हममेंसे सबोंको प्राप्त होगी और हमें तदनुसार चलना होगा। विकास-क्रममें यह बात होकर रहती है, लेकिन भिन्न-भिन्न शर्तोंमें। क्या आप विचार कर सकते हैं कि इसके आगमनके समय आपकी क्या दशा रहेगी? आपके क्या भाव रहेंगे? कैसे आप इसका स्वागत करेंगे? इन सब बातोंका अभिप्राय क्या हो सकता है? अपने शरीरके आरामको छोड़ देना, या संसारके और नातों-रिश्तोंको छोड़ देना उतना कठिन नहीं है, जितना कि अपनी अहंता (मैंपन)-को मिटा देना और 'मैं और तुम' के भेद-भावको भूल जाना है। यह विचार बहुत गम्भीर है, बहुत कठिन है, लेकिन अन्दरसे भेद-भावके मिटे बिना शान्ति कभी नहीं मिल सकती, हृदयमें पवित्रता नहीं आ सकती। अपनी अहंताको भुलाकर आत्माका एकीकरण कर लेना बहुत ही पवित्र कार्य है। आत्मसाक्षात्कार हो जानेका यह अभिप्राय है कि अन्दरका राग-द्वेष, पूर्वानुराग, किसी मुख्य वस्तुमें रुचि तथा और किसी प्रकारके वैषयिक भावोंका तिरोभाव हो जाना चाहिये। बात तो यह बहुत कठिन है, लेकिन इसे करना होगा। तुम क्या हो, इसे बिलकुल भूलकर उसकी तरह हो जाना होगा।

हमारे सामने बहुत ही बड़ा विस्तृत क्षेत्र है। इस बड़े-से क्षेत्रको हम एक छोटी-सी चीजमें छिपानेकी कोशिश करते हैं। ठीक इसी प्रकार कुछ थोड़ी-सी छोटी-छोटी बातोंका त्याग करके हम यह सोचते हैं कि हमें सफलता मिल गयी। कुछ बातोंके छोड़ देनेसे कुछ नहीं होता; चीजोंको तो त्यागनेकी भी हमें कोई आवश्यकता नहीं है। यह तो छोटी पहाड़ीके सामने खड़े रहनेके समान है। यदि हम पहाड़के उच्च शिखरका दर्शन करना चाहते हैं तो हमें उस छोटी पहाड़ीके सामने खड़े नहीं रहना होगा बल्कि वहाँसे आगे बढ़कर तेजीके साथ चलना होगा। अपनी साधारण रुचि, साधारण भक्ति-भाव या पूजा-पाठमें ही लगे रहनेसे काम नहीं चलेगा। चन्द्रोदयके पूर्व असंख्य नक्षत्र आकाश-मण्डलमें चमकते रहते हैं। चन्द्रमाके निकल आनेके बाद सब नक्षत्र फीके पड़ जाते हैं और उसके स्वागतके लिये मार्ग

छोड़ देते हैं। चन्द्रमा ही आकाशका शासनकर्ता है। हमलोगोंकी भी ठीक वैसी ही दशा है, लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि आप अपने व्यक्तित्वको छोड़ दें। बल्कि आपको यह समझना है कि किसी कार्यको अहंताके वश होकर न करें बल्कि जीवनमें प्रत्येक कार्यको करते समय आपका यह भाव होना चाहिये कि हमारा सब काम उसीके लिये है।

हम सब प्रकृतिको देखते हैं, लेकिन हमारे देखनेमें और एक चित्रकारके देखनेमें बहुत अन्तर है। चित्रकार प्रकृतिका उपासक है। आकाश, पृथ्वी, वृक्ष, पुष्पको देखकर वह प्रसन्न होता है। उनमें वह अपनी तन्मयता प्राप्त करता है। उनमें लीन होकर वह यह देखता है कि इन्हें किस प्रकार चित्रित करूँ? वह उन दृश्योंकी नकल नहीं करता बल्कि उनके साथ एक होकर उनका प्रदर्शन करता है। यही बात हम सबोंको करनी है। उसके साथ एक हो जानेमें जो बातें रुकावट डालती हों, उन सबोंको छोड़ना है। सारे बन्धनोंको काटकर फेंक देना है। उन्हें नष्ट करके ही हम उच्च शिखरपर पहुँच सकते हैं। वहाँ पहुँचकर आप उसके साथ एक हो जाते हैं। वहाँसे आप अपनेको और दुनियाको भली प्रकार देख सकेंगे। इस स्थितिमें आपको अपनी उन बातोंपर लेशमात्र ध्यान न देना होगा, जो इसके पूर्व आपके प्रसन्नताकी आधार थीं। यह दशा अपने ढंगकी एक अनोखी स्थिति है। उस शिखरपर पहुँचकर हृदय, मन और शरीर उसके अधीन हो जाता है। उसकी आज्ञानुसार सब काम सम्पादन होता है।

इस शिखरपर पहुँचनेके लिये साधारणरूपमें सबको आदेश होता है। सब लोग अन्दरकी इस आवाजको सुनते हैं। इसे सुनकर भी बहुत थोड़े मनुष्य होते हैं, जो इसका पालन करते हैं। इस आज्ञाको सुनकर इसका पालन करते हुए भी कितने हैं, जो उसमें अपनेको विलीन कर देते हैं। पहाड़से निकलकर नदी हजारों मीलकी यात्राकर समुद्रमें मिल जाती है, जहाँ उसका पृथक् अस्तित्व सदाके लिये मिट जाता है। हमें भी चाहिये कि नदीकी भाँति हम भी अपनी हस्तीको मिटा दें। हम लोगोंमें अहंताकी मात्रा अधिक होती है। हर वस्तुमें हम अपनापन देखते हैं। यदि हम पूजा करते हैं तो हम यह कहते हैं कि हम पूजा करते हैं। अपनी पूजा, अपनी प्रसन्नता, अपना मनोभाव इस प्रकार प्रत्येक कार्यको करते हुए उसे हम अपनेपनकी भावनासे भर देते हैं। उसकी आज्ञाका पालन करते हुए भी अन्धविश्वासी न बन जायँ। उसकी आज्ञाका पालन करनेका अभिप्राय यह है कि आपका हृदय और मन किसी विचारसे अवरोधित न हो। अपने पूर्वके अनुभव और कल्पनानुसार आप उसका अनुसरण न करें, बल्कि जो बात आपको तत्क्षण प्रतीत हो, उसीपर विचार करें। ऐसा करनेसे आप अनन्तमें निवास करेंगे। यही एक तरीका है, जिसका आप अनुसरण कर सकते हैं। उस अनन्तमें निवास करनेसे आप वही करेंगे, जिसके लिये आप अधिक समयसे चाह रहे थे। उस उच्च शिखरपर निवास करनेसे ही आप विज्ञानवेत्ता होंगे, आपमें स्वतन्त्र बुद्धि उत्पन्न होगी, जिसकी सहायतासे आप आनन्दके राज्यमें प्रवेश करेंगे। इस दशाके प्राप्त कर लेनेपर आपके अन्दरसे 'मैं और तुम' का भेद-भाव मिट जायगा या आप यों भी समझ सकते हैं कि मैं और तुमके मिटे बिना, ब्रह्माण्डके साथ एक हुए बिना आनन्दके राज्यमें प्रवेश नहीं हो सकता। अपने स्वभावके अनुसार जबतक आप अपनेको अलग समझे रहेंगे, अपने स्वभावानुसार ही दूसरोंको सत्यका अनुशीलन करानेकी चेष्टा करेंगे, तबतक आप सत्यसे बहुत दूर होते जायँगे। जबतक हम अलग हैं, हमारा प्रश्न यों ही बना रहेगा। अपनेको भुला देनेमें ही सारे प्रश्नोंको हल कर देनेकी शक्ति है।

ऐसी वस्तुका अनुसरण करो, जो अनन्त है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। उसकी प्राप्तिमें ही जीवनकी पूर्णता है। उसको प्राप्त कर लेनेके पश्चात् जीवनका उद्देश्य समाप्त हो जाता है। जबतक हमारा ध्यान स्थूल

शरीरकी ओर रहेगा, तबतक उसकी प्राप्ति असम्भव है। हमें तो यह करना है कि हम अपने स्थूल शरीरको ऐसा अवसर देते रहें, जिससे इसका मालूम होना दिनोंदिन कम होता रहे। ऐसा करनेसे जीवनका उद्देश्य अवश्य पूर्ण होता है।

इसके रहस्यको समझकर हम लोगोंको आनन्दमें निवास करनेका अभ्यासी होना चाहिये। आपको अभी इसका पता नहीं है कि इसका क्षेत्र कितना विस्तृत है। आनन्दका पवित्र भाव लौकिक और पारलौकिक सब भावोंसे श्रेष्ठ है। यही एक ऐसी वस्तु है, जिसका आकांक्षी सब लोगोंको होना चाहिये। यही एक ऐसा साम्राज्य है, जहाँका हमें सम्राट् बनना चाहिये। एक दफा भी यदि आप इसकी झलक पा लें तो फिर आपका कदम पीछे नहीं हट सकता। तब आप ऐसी चीजोंकी इच्छा ही न करेंगे, जो प्रतिक्षण बदलती रहती हैं। यही एक ऐसा सत्य है, जिसके लिये आपमेंसे प्रत्येकको लालायित होना चाहिये। यही वस्तु प्राप्त करनेकी है, यही वस्तु देनेयोग्य है।

इसको प्राप्त करनेके लिये हमें सौम्यतापर भी अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता है। हमारा जीवन सब प्रकारसे सरल, सादा और अच्छा होना चाहिये। हमारे रहन-सहनमें, व्यवहारमें किसी प्रकारका भद्दापन, भड़कीलापन या दम्भ नहीं होना चाहिये। यानी हम सब प्रकारसे शिष्ट और सच्चे हों। शिष्ट और सच्चे बननेके लिये जो-जो बातें आवश्यक हों, वह भी हम करें। जो मनुष्य शिष्ट, सच्चा है, चाहे किसी प्रकारके कष्टमें है, परंतु जिसमें वहाँतक पहुँचनेकी सच्ची इच्छा है, चाहे वह भटकता ही क्यों न हो, वह उस अनन्तमें शीघ्र मिल जायगा, लेकिन जिसने किसी बनावटी साधनमें सन्तोष प्राप्त कर लिया है, उसके लिये मार्ग दूर है।

इस खोजमें जो दशा आपको प्राप्त होनेवाली है, उसके प्राप्त हो जानेपर आपके अन्दरसे अकेलेपन और विषादकी दशा जाती रहेगी। सब प्रकारकी कमजोरियाँ या वहाँतक पहुँचनेमें जो वस्तुएँ विघ्न पहुँचाती थीं, वे सब मार्गसे हट जायँगी। जब आप उस अनन्त आनन्दको प्राप्त कर लेंगे, जब आप उसके साथ हो जायँगे, तब तो आप अपना अकेलापन भूल ही जायँगे। ग्लानि क्या वस्तु है, इसका आपको पता भी नहीं रहेगा। सफलता अथवा बड़प्पनका भी आपके मनमें कोई विचार नहीं रह जायगा।

आजकल हम लोगोंका ध्यान अकेलेपन, पारस्परिक मित्रता और प्रेमकी ओर अधिक रहता है। इस विचारसे हम भयभीत हो जाते हैं कि हमारे प्राचीन संस्कारोंका अन्त हो जाता है। ये वस्तुएँ अच्छी हैं, कुछ समयके लिये हमें ये प्रसन्न कर देती हैं, इनकी भी कीमत है, लेकिन अनन्त आनन्दको प्राप्त कर लेनेपर हमें इनका अभाव नहीं प्रतीत होगा। पहले हम अपनी इन्द्रियोंके सुखमें ही सुख मानते थे। आनन्दमें निवास आरम्भ हो जानेके पश्चात् संसारकी प्रत्येक वस्तुके साथ पार्थक्यका भाव मिट जाता है। फिर आकाश, घास, वृक्ष, पशु-पक्षी भी अपने हो जाते हैं!

सब कुछ भगवद्रूप

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

[योगीश्वर कवि महाराज निमिसे भागवतधर्मका पालन करनेवालेके विषयमें कहते हैं—] राजन्! यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-वनस्पति, नदी, समुद्र—सब-के-सब भगवान्‌के शरीर हैं। सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् प्रकट हैं। ऐसा समझकर वह जो कोई भी उसके सामने आ जाता है—चाहे वह प्राणी हो या अप्राणी—उसे अनन्यभावसे—भगवद्भावसे प्रणाम करता है। [**श्रीमद्भागवत**]

साधक निरन्तर अपनेको देखे

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

साधकको निरन्तर आत्म-निरीक्षण करना है, अपने-आपको देखना है। कौन क्या कर रहा है, कहाँ जा रहा है, इसे देखना साधकका काम नहीं है। यह आचार्यका काम है, उपदेशकका काम है अथवा व्यवसायीका भी काम है या जो संत-महात्मा जगत्पर स्वाभाविक अमृत-वर्षा करते रहते हैं, उनका काम है। वे लोग जगत्के दु:खोंसे दुखी होकर, कहाँ-कहाँ दु:खके क्या-क्या कारण हैं, उन्हें जानकर मिटानेका उपाय बताया करते हैं। पर साधकको तो अपने-आपको निरन्तर देखना है, वह कहाँ है, कहाँ जा रहा है, उसके मार्गका लक्ष्य क्या है? कहीं वह गिर तो नहीं रहा है? रुक तो नहीं रहा है? विपरीत दिशामें तो नहीं जा रहा है। यह उसके देखनेका काम है, परंतु यदि हम बाहरसे पुण्यात्माका वेष तथा नाम रखकर बाहरसे पुण्यदेशमें भी रहते हैं और अन्तरको भगवान्‌के साथ जोड़ना नहीं चाहते, तो यह मानना चाहिये कि हम ठीक रास्तेपर नहीं हैं, हम साधक नहीं हैं।

साधकके देखनेकी पहली बात यह है कि हमारा मन विषयोंकी ओर जा रहा है या भगवान्‌की ओर। यहींसे साधककी परीक्षा आरम्भ होती है। जिसका मन विषयोंसे हट-हटकर बार-बार भगवान्‌की ओर जाय, समझना चाहिये कि वह उन्नतिकी ओर जा रहा है। विषयोंमें जानेका न मालूम कितने जन्मोंका अभ्यास है। पर उसकी नियत बुरी नहीं है, वह बार-बार भगवान्‌की ओर लगता है तो वह ठीक रास्तेपर है। वह जा रहा है। वह मार्गकी ओर मुड़ गया है। वास्तवमें सबसे पहले साधकको जीवनकी गतिको मोड़ना है। विषयाभिमुख जीवनको मोड़कर भगवान्‌के सामने करना है। चाहे हम त्याग भी करें, पर त्यागमें यदि कीर्तिकी इच्छा हो गयी तो वह त्याग भोग है। यदि भोगकी ओर हमारे जीवनकी सम्मुखता है तो हम ठीक रास्तेपर नहीं हैं। पर यदि जीवन भगवान्‌के सम्मुख हो गया तो चाहे देर लगे तो भी वह मार्गपर है। देर लगेगी नहीं, भगवान्‌का विरद है। *'जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं'*, **'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा।'** पर चाहे देर लगे तो भी वह मार्गपर है, वह विपरीत मार्गपर नहीं है, वह ठीक रास्ते चल रहा है। भोगोंसे विरक्ति बढ़नी प्रारम्भ हो जाय और भगवान्‌में तथा भगवद्विषयमें अनुरक्ति बढ़नी आरम्भ हो जाय, यह सीधी कसौटी है। साधक अपने-आप अपने मनमें देख लें कि यदि हमारी चित्तकी वृत्ति विषयोंकी ओर अधिक बढ़ रही है तो समझना चाहिये कि हम विषय-जगत्‌में ही रह रहे हैं, चाहे हमारे रहनेके स्थानका नाम मन्दिर है, सत्संगभवन या गीता-भवन कुछ भी है। वास्तवमें तो हमारे अन्दरका भवन हमें देखना है।

तेरे भावें जो करो भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठ के अपनो भवन बुहार॥

इसी भवनमें झाड़ू लगाओ। इसे साफ करो। इसकी मलिनताको दूर करो। इसके कूड़े-करकटको बाहर फेंको। इस अन्दरके कूड़ेको लेकर कहीं झाड़ने जाओगे तो कूड़ा बिखेरोगे। तुम्हारे पास जो होगा वही तो दोगे। राग-द्वेष-युक्त पुरुष यदि कहीं उपदेशके क्षेत्रमें जा पहुँचे तो राग-द्वेष ही देगा। वह शिव-विष्णुकी लड़ाई करा देगा। साधक अपने मनको इस कसौटीपर कसता रहे कि भगवान्‌की ओर अनुराग बढ़ रहा है या नहीं। यदि भोगोंकी ओरसे मुख नहीं मोड़ेंगे और चलना प्रारम्भ करेंगे तो उलटे ही जायँगे। बदरीनारायण जानेके लिये लक्ष्मणझूलेकी ओर मुख नहीं किया और ऋषिकेशकी ओर मुख कर लिया तथा चलना शुरू कर दिया। जहाँ तुम जानेकी बात कहते हो, उस ओर तो तुम्हारा मुख ही नहीं है, तुम जाओगे कैसे? इसलिये अपने जीवनको भगवान्‌के सम्मुख कर लेना, यह साधकका पहला काम है। एक दृष्टान्त है कि एक बार मणिकर्णिकाघाटपर

काशीके कुछ लोगोंने एक नाव भाड़ेपर की। गर्मीका मौसम था, रातका समय था, काशीमें जरा भाँग छाना करते हैं। मल्लाहोंने और यात्रियोंने भी भाँग पी रखी थी। अपना ढोलक लेकर रातको गाते-बजाते हुए बैठ गये, चाँदनी रातमें प्रयाग जायँगे—यह तय किया और नाव चल पड़ी। पूरी रात बीत गयी, सबेरा हुआ, नशा उतरा तो देखा कि यह तो मणिकर्णिकाघाट ही है, कहीं आगे नहीं बढ़े। मल्लाहोंसे पूछा कि 'क्या तुम सो गये थे? खेया नहीं? नाव तो वहीं खड़ी है।' तबतक मल्लाहोंका भी नशा उतर चुका था। उन्होंने उत्तर दिया कि 'खेते-खेते तो हमारे हाथ दुखने लगे। रातभर डाँड़ चलाया है।' देखनेपर पता चला कि रस्सा ही नहीं खोला था, डाँड़ चलाते रहे, पर किनारेपर नाव बँधी रही। डाँड़ खेनेमें हाथोंमें दर्दके अतिरिक्त कुछ मिला नहीं। नाव एक कदम भी आगे नहीं बढ़ी। इसी प्रकार भगवान्‌के सम्मुख न होकर हम जो साधन करते हैं, वह साधन नहीं होता, डाँड़ ही खेना रहता है। साधकको सबसे पहले अपने जीवनकी दिशा बदलनी है। अपनेको भगवान्‌के सम्मुख करना है। इसका अर्थ पहले लक्ष्यको ठीक करना है। हमें यहाँसे मुम्बई जाना है, यह पहले तय करें। स्टेशनपर जाकर पता लगायें कि कौन-सा रास्ता ठीक है, किसमें भाड़ा कम लगता है, कौन शीघ्र पहुँचता है, किसमें सुविधा है, हमारे उपयुक्त कौन-सा मार्ग है, हम उसमें जा सकते हैं कि नहीं? अपना अधिकार, अपनी रुचि सब देखकर हमें तय करना है। चाहे योगमार्ग हो अथवा भक्तिमार्ग हो या ज्ञानमार्ग, किसीसे जायँ। रास्ते अनेक हैं, पर पानेकी वस्तु एक है, परंतु जबतक जाना कहाँ है यह ही तय नहीं, बुकिंग क्लर्कके सामने जाकर खड़े होकर टिकट माँगे, वह कहाँका टिकट दे? हमें सबसे पहले तय करना है कि भगवान्‌के मार्गमें जाना है, हमें भगवान्‌को पाना है, यह तय करके अपने जीवनको उधर मोड़ लें। हमलोग कहते हैं कि हमें लगे ३० वर्ष या ५० वर्ष हो गये, पर सच्ची बात यह है कि रस्सी तो वहीं बँधी है। भगवान्‌का नाम लेंगे, मन दुकानमें ही है। अपने-आपको पहले जीवनके उद्देश्यमें स्थिर करना है।

आरम्भमें दो बात देखनी होगी कि कहीं हम प्रमाद न कर बैठें और कहीं उलटे रास्ते न पड़ जायँ। रास्तेकी किसी चीजको देखकर उसमें फँस जाना प्रमाद है। करनेयोग्य कार्य न करना, न करनेयोग्यको करना, इसे शास्त्रमें प्रमाद कहते हैं। प्रमाद न करें। कहीं वह रास्ता न छोड़ दें। दूसरी बात है कि कहीं बुरे संगमें आकर लौट न चलें। यद्यपि भगवान्‌की ओर आगे बढ़नेवाला लौटता नहीं, यह बात ठीक है। जो भगवदाश्रयी होता है वह नहीं लौटता, परंतु जो अपने साधनके भरोसे है, वह लौट जाता है। वेदान्तके आचार्योंने भी अकृतोपासक तथा कृतोपासकका भेद बतलाया है। जो भगवान्‌की उपासना करते हुए चलते हैं, उनके विघ्नोंका नाश होता है और जो उपासनारहित चलते हैं, उनका कोई सहायक नहीं रहता। शास्त्रोंने ऐसा माना है कि यदि गुरु या परमात्माका आश्रय लेकर उनकी उपासना करते हुए चले, तो मार्ग निर्विघ्न कटेगा। जो भगवान्‌की उपासनाको साथ लिये हुए चलते हैं, वे साधनसे प्राय: नहीं गिरते और जो केवल अपने बलपर चलते हैं, उनमें एक अभिमान उत्पन्न हो जाता है। भगवान्‌ने श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥

(७। १३। छं० ३)

यह ज्ञानाभिमानियोंके लिये कहा है। ज्ञान हुआ नहीं और ज्ञानका अभिमान हो गया। अच्छे कर्मोंके कारण देवदुर्लभ पद मिल गया, अधिकार मिल गया, पर वहाँसे फिर गिरना पड़ेगा। दूसरी ओर कहा है—

बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे॥

(७। १३। छं० ३)

वेद-स्तुति है—'हे नाथ! जो लोग विश्वास करके अन्य समस्त आशाओंका परित्यागकर तुम्हारे दास हो

जाते हैं, वे केवल तुम्हारे नाम लेकर ही अनायास भवसागरसे तर जाते हैं।'

साधनसे भी गिरना हो जाता है, यदि भगवान्‌का आश्रय न हो। साधकोंके लिये बहुत-सी बातें हैं। साधकको अपने-आपको देखना है। बाहरको नहीं देखना है। अपने भीतरको देखना है। दोष यदि हमारे अन्दर बढ़ रहे हैं, घट नहीं रहे हैं तो समझना चाहिये कि हम ठीक मार्गपर नहीं हैं। दोष घट रहे हैं, दैवी सम्पत्तिके गुण बढ़ रहे हैं, भोगोंसे विरक्ति बढ़ रही है और भगवान्‌में अनुरक्ति बढ़ रही है, भोगोंकी स्मृति कम हो रही है, भगवान्‌की स्मृति बढ़ रही है, भोगोंकी स्मृतिमें आनन्द कम आ रहा है, भगवान्‌की स्मृतिमें आनन्द बढ़ रहा है, भोग अशान्ति देनेवाले प्रतीत होने लगे हैं या अशान्तिकर मालूम होते हैं, भगवान्‌की ओर जानेमें शान्तिकी अनुभूति होने लगी है, तो समझना चाहिये कि हम ठीक हैं। साधक निरन्तर अपने अन्तरको देखता रहे। जहाँ भूल हुई, वहाँ अपनी भूलको सहन न करे। नारदजीके सूत्रोंमें आया है कि विषय पहले मनमें लहरकी भाँति आते हैं। यदि इन्हें आश्रय दे दिया तो समुद्र बन जाते हैं। डूब जाना पड़ता है—'**समुद्रायन्ति।**' जरा-सा भी स्खलन हो जाय, जरा-सी भी कहीं बुराई अपने जीवनमें आने लगी, तो उसे सहे नहीं। वह बड़ी बुरी मालूम हो, इस प्रकारका पश्चात्ताप मनमें उत्पन्न हो और भगवान्‌के सामने रोये, तो भगवान् बल देंगे, शक्ति देंगे, अपनी कृपासे उस कमजोरीको दूर कर देंगे।

'**मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।**'

भगवान्‌ने कहा कि 'मुझपर निर्भर हो जाओ तो मेरी कृपासे तुम सारी कठिनाइयोंको लाँघ जाओगे।' अत: भगवान्‌की अमोघ कृपाके बलपर भरोसा करके निरन्तर बुराईसे बचता रहे, बुराईसे दबे नहीं। जो मनुष्य पापसे दबता है, उसे ही पाप दबाते हैं। भगवान्‌के सामने तो दीन रहे, वहाँ अभिमानकर न बैठे। भोगोंके सामने तलवार लिये डटा रहे, तुलसीदासजी महाराज जब भगवान्‌के सामने जाते हैं तो कहते हैं—'***कीजे मोको जमजातनामई।***' मैं आपको भूल गया। मुझे आप ऐसा बनाइये कि निरन्तर नरकमें यमकी यातना ही मिलती रहे। मैं इसी लायक हूँ। यह उनका कितना विनम्र भाव है, पर जब संसार सामने आता है तो कहते हैं—'***मैं तोहि अब जान्यो संसार। बाँधि न सकहिं मोहि हरिके बल, प्रगट कपट-आगार।***' चला जा यहाँसे, कपटका घर! मुझे बाँधने आया है? नहीं बाँध सकेगा। सावधान! वहाँ जा जिनके हृदयमें राम न बसते हों, यहाँ आया तो सपरिवार मारा जायगा। भोग समीप आनेपर भगवान्‌के बलपर ललकारते हैं। साधक भगवान्‌के सामने विनम्र रहे, भोगोंके पास आनेमें उन्हें फटकार दे। वास्तवमें ये भोग बड़े मीठे जहर हैं। भगवान्‌ने कहा—'ये जितने भी विषय-रस हैं, भोगोंके सुख हैं, आरम्भमें बड़े मीठे मालूम होते हैं—'**अमृतोपमम्।**' परंतु इनका जब परिणाम सामने आता है तो जहरीले—जहरके समान मार देनेवाला होता है—'**परिणामे विषमिव।**' भोगरूपी मीठे जहरसे बुद्धिमान्‌को बचना चाहिये, भोगोंसे सावधान रहना चाहिये। साधक कहीं भोग-जगत्‌का आश्रय ले न ले। ये दो बातें अपने जीवनमें देखते रहनेकी हैं कि 'जीवन भगवत्परायण है या भोग-परायण।' यही साधक और विषयीका भेद है। विषयीका जीवन भोगपरायण है और साधक भक्तका जीवन भगवत्परायण। साधकके प्रत्येक कर्मकी प्रेरणा साध्यकी ओरसे होती है और प्रत्येक कर्मका फल साध्यकी प्राप्ति चाहता है तथा विषयीका प्रत्येक कर्मका प्रेरक भोग होता है और प्रत्येक कर्मका फल चाहता है, भोगकी प्राप्ति। विषयी विषयोंमें आसक्त होकर राग-द्वेषके वशमें यहाँ दु:ख भोगता है और नरकोंमें जाता है। '**नरकेऽनियतं वासो भवति**········।' और भगवत्परायण साधक जीवनको शान्तिपूर्वक बिताता हुआ भगवान्‌के पदको प्राप्त होता है, यह उनके परिणामका अन्तर है। अत: हमलोग साधक बनें।

साधक बननेका यह अर्थ नहीं है कि साधकपनका अभिमान कर लें कि हम साधक हैं और सारे बाधक

हैं। यह भी बड़ी भारी रुकावट होती है। साधनका जहाँ अभिमान आया, वहाँ दूसरेमें तुच्छबुद्धि हो जाती है। दूसरोंमें यह भाव रखे कि सब भगवान् हैं। भंगी भी भगवान् है, जब भंगी झाड़ू लिये सामने आये तो भगवान्का रूप समझकर प्रणाम कर ले। मन-ही-मन कहे—'आप इस समय इस वेषमें हैं, मैं दूसरे वेषमें हूँ। इस समय आप दूसरी लीला करेंगे तो उस लीलाके होते समय भी मैं भूलूँ नहीं कि आप मेरे सरकार हैं, मेरे नाथ हैं।' साधक किसीको नीचा न समझे। साधकके लिये विद्या, धन, वर्ण, वर्ग, जाति, साधन, भक्ति एवं ज्ञानका अभिमान बाधक है, ये साधनाके विघ्न हैं। इन अभिमानोंसे दूर रहें। अपने-अपने स्वाँगका बरतना ही वर्णाश्रमका पालन है। अपने स्वाँगसे हटे नहीं, दूसरेको नीचा माने नहीं, सबमें भगवान् देखे, कुत्तेमें तथा नरकके कीटमें भी भगवान् हैं। अत: किसीसे भी घृणा न करे। किसीको भी नीचा न माने। दूसरेके पापकी ओर न देखे। अपने दोषको देखे। अपनी भूलें देखे और अपने-आपको ठीक करनेमें निरन्तर रात-दिन लगा रहे। यह नहीं होना चाहिये कि घड़ी, आधी घड़ी बैठे, फिर छोड़ दे।

प्राय: यही होता है कि सत्संग भी करते हैं, पाठ भी करने बैठते हैं। पूरा कर लेते हैं, पुन: उसी विषय-सेवनमें लग जाते हैं। जितना विषय-सेवन होगा, उतने उसीके संस्कार बनते रहेंगे। भगवान्के संस्कार नहीं आयेंगे। भगवान्को तो रात-दिन पकड़े रहना चाहिये, सदा भगवान्की ही पूजा करें। प्रात:काल सोकर उठनेपर भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन्! आज प्रात:से सायंतक तथा सायंसे फिर प्रात:तक जो कुछ मैं करूँ, केवल आपकी पूजा ही करूँ।' यह साधकका जीवन है। साधक दिन-रात अपनेको सावधानीके साथ भगवान्के प्रति जोड़े रखे, यही धर्म है। उलटे मार्गपर आ जाय तो फिर सावधान होकर दृढ़ताके साथ ठीक रास्तेपर आये। भगवान्की कृपा-भिक्षा चाहे। फिर चल पड़े, चलता जाय, तो पहुँच जायगा। मनचाहे भोग नहीं मिलेंगे; क्योंकि वे कर्मके फल हैं। भगवान् मनचाहे आपको मिलेंगे; क्योंकि वे हैं और आपके स्वरूप हैं। भगवान् हैं, आपके अधिकारकी चीज हैं, निरन्तर आपके साथ रहते हैं। आपको छोड़ नहीं सकते। भगवान्का मिलना निश्चित है और सहज है, भोगका मिलना अनिश्चित और बड़ा कठिन है। अत: साधक भोगोंकी ओर न देखकर निरन्तर भगवान्की ओर विश्वासपूर्वक देखे कि भगवान् (मिलेंगे) मिले हुए हैं, इस प्रकार रात-दिन भगवान्का चिन्तन करे। यह साधनाका स्वरूप है।

[प्रेषिका—सुश्री कविता डालमिया]

सम्मान तथा मधुर भाषणसे राक्षस भी वशीभूत

एक बार एक बुद्धिमान् ब्राह्मण एक निर्जन वनमें घूम रहा था। उसी समय एक राक्षसने उसे खानेकी इच्छासे पकड़ लिया। ब्राह्मण बुद्धिमान् तो था ही, विद्वान् भी था; इसलिये वह न घबराया और न दुखी ही हुआ। उसने उसके प्रति सामका प्रयोग आरम्भ किया। उसने उसकी प्रशंसा बड़े प्रभावशाली शब्दोंमें आरम्भ की—'राक्षस! तुम दुबले क्यों हो? मालूम होता है, तुम गुणवान्, विद्वान् और विनीत होनेपर भी सम्मान नहीं पा रहे हो और मूढ़ तथा अयोग्य व्यक्तियोंको सम्मानित होते हुए देखते हो; इसीलिये तुम दुर्बल तथा क्रुद्ध-से रहते हो। यद्यपि तुम बड़े बुद्धिमान् हो तथापि अज्ञानी लोग तुम्हारी हँसी उड़ाते होंगे—इसीलिये तुम उदास तथा दुर्बल हो।'

इस प्रकार सम्मान किये जानेपर राक्षसने उसे मित्र बना लिया और बड़ा धन देकर विदा किया।

(महा० शान्तिपर्व, आपद्धर्म)

भक्तगाथा—

भक्त किशनसिंहजी

(पं० श्रीहरद्वारीलालजी शर्मा 'हिन्दीप्रभाकर')

बीकानेर-राज्यान्तर्गत गारबदेसर एक प्रसिद्ध स्थान है। भक्त किशनसिंहजी वहींके ठाकुर थे। उनका गोलोकवास हुए लगभग डेढ़ सौ वर्ष हुए हैं। ठाकुर साहेब श्रीमुरलीधरजीके बड़े भक्त थे। जनतामें प्रसिद्ध है कि उनको प्रत्येक दिन पूजनके पश्चात् सवा मासा सोना भगवान्से मिला करता था और वे उक्त सोनेको नित्य ब्राह्मणोंको दान कर दिया करते थे। अद्यावधि मूर्तिके अधरोष्ठपर सोनेका चिह्न है। एक दिन ठकुरानी साहेबाने हठ करके सोना अपने पास रख लिया था, उसके बाद मूर्तिद्वारा सोना प्राप्त नहीं हुआ। ऐसी ही अनेक बातें उनके सम्बन्धमें जनताद्वारा सुननेमें आती हैं। उनमेंसे कुछका पाठकोंको परिचय कराया जाता है। सम्भव है कि आजकलके वैज्ञानिक विद्वान् इन बातोंपर विश्वास न करें, परंतु जो भगवान्के भक्त हैं, उनके हृदयमें उनका अक्षर-अक्षर प्रेम और भक्तिका उद्रेक उत्पन्न किये बिना न रहेगा; क्योंकि भगवत्प्रभावकी ये बातें जितनी भक्तलोग समझते हैं, उतनी और कोई नहीं। अस्तु!

ठाकुर साहेब ईश्वरकी शपथका बहुत मान रखते थे, यहाँतक कि कई बार दुष्ट प्रकृतिवालोंने उनको शपथ दिलाकर धोखा देनेका भी प्रयत्न किया था।

एक बार कुछ चोरोंने उनको यह शपथ दिला दी थी कि 'ठाकुर साहेब! हम ऊँटोंको ले जाते हैं, यदि आपने किसीसे कहा तो आपको भगवान्की आन (शपथ) है।' ठाकुर साहेबने किसीसे नहीं कहा, परंतु चोर ऊँटोंको तमाम रात दौड़ाकर सबेरे वापस उसी गाँवके पास आ गये। प्रात:काल चोरोंने पूछा, 'यह कौन-सा गाँव है?' लोगोंद्वारा गारबदेसर सुनकर उनको बहुत ही आश्चर्य हुआ और पकड़े जानेके भयसे वे भयभीत होकर ऊँटोंको वहीं छोड़कर भाग गये।

एक साल गारबदेसरके चारों ओर सभी जगह वर्षा हो गयी थी, परंतु वहाँ एक बूँद भी नहीं पड़ी। इससे ठाकुर साहेबने कहा कि—

सो कोसाँ बिजली खिंचें, यामें कूण सँदेह।
किसना की तृसना मिटे, जो आँगण बरसे मेह॥

भगवान्ने उनकी प्रार्थनापर तुरंत ध्यान दिया। उसी समय बादलोंकी घटा छा गयी और अच्छी वर्षा हुई।

ठाकुर साहेब जागीरदार होते हुए भी हमेशा काठकी तलवार ही म्यानमें रखा करते थे। एक बार किसी चुगलखोरने बीकानेरनरेशसे कह दिया कि गारबके ठाकुर साहेब समयपर क्या काम आयेंगे, वे तो काठकी तलवार लटकाये रहते हैं। इसपर दशहरेके उत्सवमें, जबकि सभी जागीरदार मौजूद थे, महाराजा साहेबने कोई प्रसंग उठाकर सबको अपनी-अपनी तलवारें दिखानेकी आज्ञा दी। सभीने अपनी-अपनी तलवारें निकाल लीं, परंतु ठाकुर साहेब इतने डरे कि वे थर-थर काँपने लगे और मन-ही-मन ईश्वरसे प्रार्थना की, 'हे भगवन्! आज 'किशने' की इज्जत आपके ही हाथ है।' और डरते-डरते उन्होंने तलवारको म्यानसे निकाला परंतु तलवारके निकालते ही राजसभामें तलवारकी चमकसे सबकी आँखोंमें चकाचौंध छा गयी। तब महाराजा साहेबने उस चुगलखोरको बहुत ही बुरा-भला कहा। यह देखकर ठाकुर साहेबने केवल इतना ही कहा कि 'इन्होंने तो सत्य ही कहा था, परंतु ईश्वरने इनको झूठा कर दिया है, इसमें इनका कुछ भी अपराध नहीं है!'

एक बार ठाकुर साहेब किसी यात्रामें महाराजा साहेबके साथ जा रहे थे। राहमें पूजाका समय हो जानेपर ठाकुर साहेब कपड़ा ओढ़कर घोड़ेपर ही भगवान्की मानसिक पूजा करने लगे। पूजामें आप भगवान्को दहीका भोग लगानेकी तैयारी कर रहे थे, इसी बीचमें महाराजा साहेबकी दृष्टि उधर पड़ गयी। महाराजा साहेबने दो-तीन बार पुकारकर कहा, 'किशनसिंह! नींद ले रहे हो क्या?'

ठाकुर साहेब पूजामें मग्न थे। उनको महाराजा साहेबका पुकारना सुनायी ही नहीं पड़ा। इससे महाराजने

रुष्ट होकर अपने घोड़ेको उनके घोड़ेके पास ले जाकर उनका कपड़ा खींचकर दूर कर दिया। फिर महाराजा

साहेबने उधर दृष्टि डाली तो उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ; क्योंकि घोड़ा और काठी सबपर दही-ही-दही फैला हुआ था। उन्होंने ठाकुर साहेबसे पूछा, 'किशनसिंह! यह क्या है?' कुछ समय तो ठाकुर साहेब चुप रहे, परंतु महाराजा साहेबके अधिक आग्रह करनेपर उन्होंने स्पष्ट बता दिया कि 'महाराज! मैं मानसिक पूजनमें भगवान्‌को दहीका भोग लगा रहा था, पर आपके वस्त्र खींचनेसे मैं चौंक उठा। अकस्मात् हिल जानेसे मेरा मानस दही गिर गया। वही दही भगवान्‌की लीलासे प्रत्यक्ष हो गया मालूम होता है।' यह सुनकर महाराजा साहेबने गद्‌गद होकर उनसे कह दिया—'आप घर चले जायँ और भगवान्‌का भजन करें।'

एक बार सरकारी बकाया देनेमें देरी होनेसे इनपर महाराजा साहेबने रुष्ट होकर कहा—'किशनसिंह! यह ठीक नहीं है, समयपर सरकारी लगान जमा हो जाना चाहिये।' ठाकुर साहेबके मुँहसे निकल गया—'दीपावलीतक ठहरिये, आपके रुपये जमा करके ही मैं दीपावलीका पूजन करूँगा।' यों कहकर ठाकुर साहेब घर लौट आये, परंतु समयपर रुपये इकट्ठे न हो सके। ठीक दीपावलीको सन्ध्यातक उन्होंने इधर-उधरसे जुटाकर रुपये एकत्र किये। पूजन करनेका समय हो जानेसे भीतरसे आदमी बुलाने आया, पर वे बिना ही पूजन किये रुपये लेकर घोड़ेपर सवार हो गये और सुबहतक साठ मील चलकर बीकानेर पहुँचे। महलमें उनको देखते ही महाराजा साहेबने उनसे पूछा, 'किशनसिंह! तुम कल ही जानेवाले थे न? क्या बात है? गये क्यों नहीं? रातको तुम्हारी तबीयत तो नहीं बिगड़ गयी?' महाराजा साहेबकी बातें सुनकर ठाकुर साहेबने कहा—'अन्नदाताजी! मैं तो अभी-अभी रुपये जमा करनेके लिये सीधा गाँवसे चला आ रहा हूँ। मैं कल यहाँ था ही नहीं, आपको किसी दूसरेकी बातका ध्यान रह गया होगा।'

यह सुनकर महाराजा साहेबने कहा—'तुम क्या कहते हो? अभी रुपये जमा कराने आये हो? रुपये तो तुमने कल ही जमा करा दिये थे।'

ठाकुर साहेबने जवाब दिया कि 'नहीं अन्नदाता! मैं तो कल गाँवमें ही था। आप यह क्या फर्माते हैं?' अन्तमें महाराजा साहेबने रोकड़में जमा किये हुए रुपये और उनके हस्ताक्षर दिखाये। उनको देखते ही ठाकुर साहेबकी आँखें प्रेमाश्रुओंसे भर गयीं और उनके मुँहसे केवल इतना ही निकला—'हाँ, हस्ताक्षर तो मेरे-जैसे ही हैं।' ठाकुर साहेब अपने भगवान्‌की लीलाको समझकर गद्‌गद हो गये। बीकानेरनरेश भी भक्तकी महिमा और भगवान्‌की भक्तवत्सलता देखकर मुग्ध हो गये! ठाकुर साहेबने लौटकर भगवान् मुरलीधरजीका मन्दिर बनवाया जो अभीतक उनकी कीर्तिको बढ़ा रहा है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

वर्षार्थमष्टौ प्रयतेत मासान्निशार्थमर्धं दिवसं यतेत। वार्द्धक्यहेतोर्वयसा नवेन परत्रहेतोरिह जन्मना च॥

'मनुष्यको चाहिये कि आठ महीनेतक खूब परिश्रम करे, जिससे वह वर्षाऋतुमें सुखपूर्वक खा सके, दिनभर इसलिये परिश्रम करे कि रातमें सुखकी नींद सो सके, जवानीमें बुढ़ापेके लिये संग्रह करे और इस जन्ममें परलोकके लिये प्रयत्न करे।'

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[स्वार्थ-अभिमानरहित सेवा]

एक ही शरीरके अनेक अवयव हैं। जैसे—हाथ हैं, पैर हैं, इन्द्रियाँ हैं, प्राण हैं, मन है, मस्तिष्क आदि हैं। ये सब शरीरके निर्वाहके लिये काम करते हैं। सब अवयवोंके काम अलग-अलग हैं। हाथका काम लेने-देनेका है। पैरोंका काम चलना है। इन्द्रियोंका काम भी अलग-अलग है। प्राणोंके कार्य अलग-अलग हैं। मन-बुद्धिके काम अलग-अलग हैं। जैसे अलग-अलग काम करते हुए सभी अंग सबके हितमें लगे हुए हैं, इसी तरह अनेक प्राणी अलग-अलग काम करते हुए समाजके हितके लिये ही हैं। इसलिये उन सबको संसारके हितमें ही लगे रहना चाहिये।

हम जहाँ अपने स्वार्थके लिये काम करते हैं, वहीं भूल होती है। मान लो, हाथ केवल अपने लिये काम करें, पैर केवल अपने लिये काम करें, आँखें अपने लिये काम करें, कान अपने लिये काम करें तो ऐसी दशामें शरीरका निर्वाह नहीं होगा अर्थात् पैर कहें कि हम अपना ही काम करेंगे, शरीरको उठाये क्यों फिरें? हम शरीरको क्यों उठायें? हम हाथोंको क्यों उठायें? तो ऐसे शरीरका काम नहीं चल सकता, अंगोंका काम नहीं चल सकता। इसी तरह स्वार्थवश होकर यदि प्रत्येक प्राणी अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहे तो संसारका काम नहीं चल सकता; क्योंकि सभी प्राणी संसारके अवयव हैं—शरीर हैं।

शरीर किसी भी रीतिसे संसारसे अलग सिद्ध नहीं हो सकता अर्थात् बनावटकी दृष्टिसे, धातुकी दृष्टिसे, संरक्षककी दृष्टिसे, किसी भी रीतिसे अलग सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे, एक शरीरके अवयवोंकी आकृति, उनके कर्म अलग-अलग होते हुए भी वे सभी एक शरीरके अंग हैं, वैसे ही संसारमें छोटे-बड़े जितने भी प्राणी हैं, वे सभी एक विराट् शरीरके अंग हैं। विराट् शरीरके अंग होकर वे विराट् शरीरके हितके अतिरिक्त अपना व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करते हैं तो भूल करते हैं।

पशु-पक्षियोंमें यह विवेक नहीं है कि वे अपना स्वार्थ सिद्ध करें अथवा न करें; पर मनुष्योंको भगवान्ने विवेक दिया है। इसलिये साधकोंके मनमें यह विचार आता है कि हम अपना ही स्वार्थ कैसे सिद्ध करें? परंतु स्वार्थरत मनुष्य अपने कुटुम्बके पालनमें ही लगे रहते हैं। उदारचरित पुरुषोंकी दृष्टिमें सारी वसुधा ही अपना कुटुम्ब है—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

'यह अपना है, यह पराया है, ऐसी गिनती तो तुच्छ विचारवाले पुरुषोंकी होती है। जिनके हृदयके भाव तुच्छ हैं, जो स्वार्थरत हैं, उन लोगोंकी ऐसी भावना होती है। उदार भावनावाले पुरुषोंके लिये सारा संसार ही कुटुम्ब है।' जैसे, अपने घरमें रहनेवाले पारिवारिक सदस्य अपने कुटुम्बी हैं, ऐसे ही उनकी दृष्टिमें कोई भी प्राणी हो, चाहे वह स्थावर हो या जंगम, वह अपने कुटुम्बका है—वास्तवमें यही मानवता है।

शास्त्रोंमें आया है कि घरमें रहनेवाली चींटियाँ, मक्खियाँ, चूहे सभी हमारे कुटुम्बी हैं। वे भी उसे अपना घर मानते हैं। चिड़ियाँ जहाँ अपना घर बनाती हैं, वहाँ वे दूसरी चिड़ियोंको नहीं रहने देतीं। सोचिये, एक घरमें कितने घर हैं? सबका अपना-अपना घर है। अपना-अपना घर समझकर काम करना—यह पशुता है। भागवतमें आया है—'**पशुबुद्धिमिमां जहि**'—इस पशु-बुद्धिको छोड़ दो। शरीरको 'मैं-मेरा' मानना ही पशु-बुद्धि है। अहंता-ममता करना मानवी बुद्धि नहीं है।

मानवी बुद्धिमें सबके हितमें अपना हित है। उसमें अपना व्यक्तिगत हित नहीं होता। सबका हित ही अपना

हित है। आज हमलोगोंकी आध्यात्मिक उन्नतिमें देरी हो रही है। इसका कारण क्या है? यही है कि हम अपना व्यक्तिगत हित ही चाहने लगे हैं। हम अपने व्यक्तित्व (परिच्छिन्नता)-को कायम रखना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि मेरी मुक्ति हो जाय, मुझे सुख मिले, मेरा हित हो, मेरा स्वार्थ सिद्ध हो—ऐसा पशु-स्वभाव रखकर ही हम काम करते हैं। इसलिये हमारा शीघ्र उद्धार नहीं हो रहा है।

भगवान्ने गीताजीमें कहा—'**परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ**' (३।११) अर्थात् मनुष्य देवताओंकी वृद्धि करें और देवता मनुष्योंकी वृद्धि करें। मनुष्य देवताओंका पूजन करते रहें, उनका आदर करते रहें, उनकी वृद्धि करते रहें और देवता मनुष्योंको कर्तव्यपालनकी आवश्यक सामग्री देते रहें, जिससे मनुष्य फिर उनका पूजन कर सकें। गीताके तीसरे अध्यायके दसवें श्लोकमें आया है कि यज्ञके सहित प्रजापतिने प्रजाको पैदा किया। 'यज्ञ'का अर्थ कर्तव्यसे है। जहाँ यज्ञका अर्थ कर्तव्य होता है, वहाँ मनुष्यों और देवताओंके कर्तव्यका वर्णन आता है। इसलिये यज्ञोंकी रचना कहकर मनुष्यों और देवताओंका कर्तव्य भी बता दिया। मनुष्योंके लिये केवल देवताओंकी ही वृद्धि करना कर्तव्य है—यह भाव नहीं है, प्रत्युत देवता तो यहाँ उपलक्षणरूपसे हैं। इसलिये मनुष्यके लिये प्राणिमात्रका हित चाहना कर्तव्य है। जिन प्राणियोंसे उसका सम्बन्ध है, उनके प्रति कर्तव्यका पालन करना और बदलेमें अपने लिये कुछ नहीं चाहना—यही मनुष्यमात्रका कर्तव्य है। इस प्रकार कर्तव्यका पालन करनेसे उसे कर्तव्यकी सामग्री स्वतः देवताओंसे और अन्य प्राणियोंसे मिलती रहेगी। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको अपने कर्मद्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंकी सेवा करते रहना चाहिये। गीतामें भगवान्ने कहा है—'अपने-अपने कर्मोंसे भगवान्की पूजा करके मनुष्य अपना उद्धार कर लेता है'—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(१८।४६)

इसलिये अपने कर्मोंद्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंके रूपमें भगवान्का पूजन करके सिद्धिको प्राप्त करो। जैसे हाथ अपने कर्मोंद्वारा शरीरके सभी अंगोंकी सेवा करे, मुख अपने कर्मोंद्वारा सबकी सेवा करे। पेटमें अन्न जाय तो वह उसको सभी नाड़ियोंतक पहुँचाकर सेवा करे। इसी तरह मनुष्य अपने स्वार्थकी भावना न रखकर सबकी सेवा करे तो उसे कल्याणकी प्राप्ति सहज ही हो जाय।

परम श्रेयकी प्राप्तिमें बाधक है—अपने स्वार्थकी भावना। हममें कुटुम्बगत, व्यक्तिगत स्वार्थ-भावना है; अपनी जातिगत, देशगत स्वार्थ-भावना है—यही घटियापन है। उदारताके भाव जितने अधिक होंगे, उतना ही अच्छा होगा। तुच्छ भाव जितने आते जायँगे अर्थात् शरीरके लिये सीमित स्वार्थ-भाव रहेगा, उतना ही तुच्छ रहेगा। अपने पास जो वस्तुएँ हैं, वे समष्टिकी हैं और सबकी सेवाके लिये हैं। अपना निर्वाह करो और सबकी सेवा भी करो। अपनी-अपनी वस्तुओंको केवल अपने सुख-भोगके लिये ही मत समझो। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

एहि तनु कर फल बिषय न भाई।

इस मनुष्य-शरीरका लक्ष्य विषय भोगना नहीं है, संसारका सुख लेना नहीं है; किंतु सबकी सेवा करना है। इसलिये सबको सुख कैसे पहुँचे, सबका भला कैसे हो, सबको आराम कैसे पहुँचे—इन बातोंका चिन्तन करते रहो। गीताके तीसरे अध्यायके ग्यारहवें श्लोकमें मनुष्योंको देवताओंकी वृद्धि करनेके लिये कहा गया है। फिर बारहवें श्लोकमें यह कहा गया है कि देवतालोग मनुष्योंको 'इष्ट भोग' देंगे। 'इष्ट भोग' का अर्थ प्रायः टीकाकार इच्छित पदार्थ ही लेते हैं; परंतु यहाँ इस प्रकरणमें आगे (पहले), बीचमें और पीछे परम श्रेयकी प्राप्तिकी बात है। नवें श्लोकमें कहा है कि 'यज्ञके लिये किये जानेवाले कर्मोंके अतिरिक्त कर्म बाँधनेवाले हैं।'

तात्पर्य यह है कि यज्ञके लिये कर्म किया जाय तो मुक्ति होगी अन्यथा बन्धन होगा। ग्यारहवें श्लोकमें परम कल्याणकी प्राप्तिकी बात कही गयी है और तेरहवें श्लोकमें कहा है कि 'यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होते हैं' अर्थात् कल्याणको प्राप्त होते हैं। इसलिये जहाँ परम कल्याणकी प्राप्तिका प्रकरण है, वहाँ देवता लोग इच्छित भोग मनुष्योंको देंगे—यह बात कहना प्रासंगिक नहीं प्रतीत होगा। इसलिये यहाँ 'इष्टभोगान्' पदोंका अर्थ इच्छित पदार्थ न लेकर 'यज्ञकी सामग्री' लेना चाहिये।

'भुज' धातुका एक अर्थ 'पालन' होता है और दूसरा अर्थ 'खाना' होता है। पालन अर्थमें भुज धातु 'भुनक्ति' परस्मैपद होती है और 'खाने' अर्थमें 'भुङ्क्ते' पद होता है, वह आत्मनेपद होता है। 'अवनिं भुनक्ति' और 'ओदनं भुङ्क्ते'—ऐसे वाक्य बनते हैं। पृथ्वीका पालन करनेके अर्थमें और भात खानेके अर्थमें—दोनोंमें 'भुज' धातु व्यवहृत होती है। 'भोग' शब्द दोनों अर्थोंमें बनता है। इसलिये जहाँ कल्याणकी बात चल रही हो, वहाँ सबकी रक्षाके आवश्यक पदार्थ अर्थात् यज्ञकी सामग्री अर्थ लेना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। भगवान्ने बारहवें श्लोकमें 'भुङ्क्ते' पद देकर यह बात बतायी है कि सबके लिये दी हुई सामग्रीको जो अकेला खा जाता है, वह चोर है। यदि भोग केवल मनुष्यके लिये दिया हुआ होता और वह उसे खाता तो उसे चोर कहना युक्तिसंगत नहीं है। इसलिये मनुष्यको जो भी सामग्री मिली है, उसे वह अकेले भोगनेका अधिकारी नहीं है। वह सामग्री उसे सबकी सेवामें लगानेके लिये ही मिली है।

किसीके घरमें यदि पैसे कमानेवाला व्यक्ति कह दे कि 'मैं ही कमाता हूँ, मैं अकेला ही खाऊँगा।' तो क्या यह बात न्याययुक्त होगी? स्त्रीको कह दे कि 'तू तो घरपर बैठी रहती है, तुझे क्यों कमाईका हिस्सा दिया जाय? मैंने परिश्रम किया है, मैंने कमाया है। मैं अकेला ही भोग करूँगा।' इस परिस्थितिमें क्या परिवार सुचारुरूपसे चलेगा? कभी नहीं। ऐसे ही हम अपने-अपने स्वार्थकी बातें करें तो सृष्टिका काम ठीक तरहसे नहीं चल सकेगा। स्वार्थका त्याग करके कर्तव्य-कर्म करनेसे ही सृष्टिचक्र ठीकसे चलेगा। इसीलिये भगवान्ने गीतामें कर्तव्य-पालन न करनेवालेकी बड़ी भारी भर्त्सना (निन्दा)-की है (३।१६)। मनुष्य यदि अपने कर्तव्यका सुचारुरूपसे पालन करे तो मुक्ति स्वतःसिद्ध है। कर्तव्यका सम्बन्ध केवल परहितमें ही होता है। कर्तव्य अपने लिये करना भोग है, कर्तव्य नहीं।

मनुष्य अपने कर्तव्यका सुचारुरूपसे सांगोपांग पालन न करके ही बन्धनमें पड़ता है; नहीं तो मुक्ति स्वतःसिद्ध है। हमारे पास जो कुछ है, यह सब संसारसे ही हमें मिला है। अन्न है, जल है, वस्त्र है, हवा है, पानी है, रहनेका स्थान है—ये सब हमें समष्टि संसारसे मिले हैं। धनी-से-धनी राजा-महाराजा भी यह नहीं कह सकता कि मैं दूसरोंसे सेवा लिये बिना अपना निर्वाह कर सकता हूँ। अकेला अपना निर्वाह कोई भी नहीं कर सकता। सड़कपर चलता है, तो क्या सड़क अपनी बनायी हुई है? वृक्षके नीचे मनुष्य आराम करता है तो क्या वृक्ष उसका अपना लगाया हुआ है? कहीं जल पीता है तो क्या कुआँ उसने ही खुदवाया है? संसारसे लेना ही पड़ता है। अपने निर्वाहके लिये हमें सबसे सेवा लेनी ही पड़ती है। इसलिये यदि वास्तवमें हम मनुष्य हैं, तो हमने जितना लिया है, उससे अधिक देना चाहिये। सबके हितके लिये हमें काम करना चाहिये। जब औरोंकी उदारतापर हम जीते हैं, तब हमें भी औरोंके प्रति उदार होना चाहिये। सबके हितमें रत रहनेसे भगवत्प्राप्ति हो जाती है—'**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः**' (गीता १२।४), इसलिये हमें सबके हितकी भावनासे ही कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।

सारा संसार भी मिलकर एक आदमीकी इच्छाकी पूर्ति कर दे—यह सम्भव नहीं है, परंतु एक आदमी सारे

संसारके हितकी भावना पूरी कर सकता है। हम भले ही एक आदमीकी सारी इच्छाएँ पूरी न कर सकें; परंतु अपने पास जो सामग्री है, उसे उदारतापूर्वक दूसरोंके हितमें समर्पित कर दें तो हमें कल्याणकी प्राप्ति अवश्य हो जायगी।

मनुष्य जितने कम व्यक्तियोंके सुखका—हितका भाव रखेगा, उतना ही वह नीचा समझा जायगा। कमानेवाला यदि केवल अपना पेट भरेगा या आप ही अधिक खर्च करेगा तो घरमें आदर नहीं पायेगा। जो अपने स्वार्थका त्याग करके दूसरोंके हितमें जितना अधिक खर्च करेगा, वह उतना ही ऊँचा माना जायगा। जो जितना अपना व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़कर कुटुम्बकी सेवा करेगा, वह उतना ही अच्छा माना जायगा। जो कुटुम्बके सिवा पड़ोसियोंकी सेवा करेगा, वह और भी ऊँचा होगा। पड़ोसियोंका ही नहीं, सम्पूर्ण गाँववालोंका हित करेगा तो वह और ऊँचा होगा। केवल गाँवका ही नहीं, प्रान्तका हित करेगा, वह और ऊँचा होगा। इसी प्रकार प्रान्तका ही नहीं, सारे देशका, सारे विश्वका हित करनेवाला उनसे श्रेष्ठ माना जायगा। जो केवल मनुष्योंकी ही नहीं, देवता, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि सब जीवमात्रकी सेवा करेगा, वह और भी श्रेष्ठ होगा। इसी प्रकार जो भगवान्‌की सेवा करेगा तो वह सर्वश्रेष्ठ हो जायगा। जैसे, वृक्षके मूलमें जल देनेसे सारा वृक्ष हरा हो जाता है; इसी तरह संसाररूपी वृक्षके मूल भगवान्‌का चिन्तन करनेसे, भगवान्‌का भजन करनेसे उसके द्वारा संसारमात्रकी सेवा स्वतः होगी।

सिद्धान्त यह हुआ कि जितनी सेवा व्यापक होती जायगी, उतना ही सेवा करनेवाला श्रेष्ठ बनता जायगा। हमें जो कुछ मिला है, वह सृष्टिसे मिला है। इसलिये ईमानदारीसे उसे सृष्टिकी सेवामें लगा देना ही हमारा परम कर्तव्य है—यही गीताका कर्मयोग है।

नारायण! नारायण! नारायण!

लघु कथा—

पितृ-ऋण

(श्रीअरविन्दजी मिश्र)

औरंगजेबने अपने पिता शाहजहाँको कैद कर लिया था। कैदखानेमें शाहजहाँके कक्षमें एक सुराही रखी थी, जो शाहजहाँसे हड़बड़ीमें टूट गयी।

औरंगजेबका हुक्म था कि शाहजहाँ उसे अपने पुत्रकी तरह नहीं वरन् एक बादशाहकी तरह माने। शाहजहाँको पीनेका पानी रखनेके लिये एक नयी सुराहीकी जरूरत थी। इसलिये उन्होंने बड़े अदबसे एक अर्जी लिखकर भेजा—'जहाँपनाह! सलामत रहें। हुजूर! गुस्ताखी माफ करें। मेरी गलतीसे सुराही टूट गयी है। गर्मीका महीना है। पानीकी बड़ी किल्लत है। एक नयी सुराहीका इन्तजामकर रहम करें।'

औरंगजेब बहुत कंजूस और अत्याचारी था। उसने बड़ी बेरहमीसे उसी अर्जीके पीछे लिखकर लौटा दिया—'एक कैदीको वर्षमें एक ही सुराही मुहैया करायी जाती है। चूँकि उसे आपने दो महीनेमें ही तोड़ दिया, इसलिये बाकी दस महीने उसी टूटी हुई सुराहीका इस्तेमाल करें।'

इस फरमानसे शाहजहाँ आहत हुआ। उसने औरंगजेबको धिक्कारते हुए फिर एक पैगाम लिखकर भेजा—

'हमारे हिन्दू भाइयोंसे कुछ सीख लो। वे लोग माता-पिताकी सेवाको अपनी खुशकिस्मती मानते हैं। जबतक उनके माता-पिता जीवित रहते हैं, वे उनकी भरपूर सेवा करते हैं। इतना ही नहीं, जब उनके माता-पिताकी मृत्यु हो जाती है तो वे मृतात्माको प्रतिदिन जलतर्पण देकर प्रतीकरूपमें सेवा करते हैं। प्रतिदिन स्मरण करते हैं। इसे हिन्दू भाई बेहद पुण्यका कार्य मानते हैं।'

तुलसी-साहित्यमें विवाह-संस्कारकी वृहद् व्याख्या

(डॉ० नीतू सिंह)

विवाह मानव-जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कार है। भारतीय साहित्य-ग्रन्थों, धर्मग्रन्थोंमें इसका विस्तारसे वर्णन मिलता है। 'मनुस्मृति' में आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख है—१. ब्राह्म विवाह, २. दैव विवाह, ३. आर्ष विवाह, ४. प्राजापत्य विवाह, ५. आसुर विवाह, ६. गान्धर्व विवाह, ७. राक्षस विवाह और ८. पैशाच विवाह। इन आठ प्रकारके विवाहोंमें ब्राह्म विवाहको ही श्रेष्ठ माना गया है। मनुने ब्राह्म विवाहकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि अच्छे गुण और शीलसम्पन्न स्वभाववाले वरको स्वयं बुलाकर उसे वस्त्राभूषणसे अलंकृत और पूजितकर कन्या देना ब्राह्म विवाह है।

गोस्वामीजीने विवाह-संस्कारको सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उन्होंने इस संस्कारका 'मानस', 'कवितावली', 'गीतावली' में स्थान-स्थानपर उल्लेख किया है। जब इतनेसे भी उन्हें सन्तुष्टि नहीं मिली तो उन्होंने 'पार्वती-मंगल' और 'जानकी-मंगल' की रचना की है। विवाह-सम्बन्धी सम्पूर्ण वर्णन तुलसीकाव्यमें या तो शिव-पार्वती-विवाहसे सम्बन्धित है या सीता-रामके विवाहसे। दोनों विवाह ब्राह्म विवाह ही हैं।

तुलसीकाव्यमें निदर्शित वैदिक या शास्त्रविहित कृत्योंके अन्तर्गत वरदेखी, कलश-स्थापना, मण्डप-स्थापना, लगन देना, बारात-प्रस्थान, शान्तिपाठ, अर्घ्य, मधुपर्क, अग्नि-स्थापना, कुशोदक लेना, शाखोच्चार, पाणिग्रहण, होम, सिन्दूरवन्दन और भाँवरको स्वीकार किया जा सकता है तथा लोकाचार कृत्योंके अन्तर्गत तेल चढ़ाना, अगवानी, जनवासा, सामध, पावड़े पड़ना, परछन, आरती, नेगचार, लावा, सिलपोहनी, कोहबर ले जाना, जुआ खेलना, लहकौरि, जेवनार, गारी, निछावरि और मुँहदिखायी-जैसे कृत्य आते हैं। तुलसी-साहित्यमें इनका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

वरदेखी—कन्याके लिये योग्य वर देखने या खोजनेको 'वरदेखी' या 'बरेखी' कहते हैं। यहींसे विवाह-संस्कारका श्रीगणेश होता है। 'मानस' और 'पार्वती-मंगल' में वरदेखीकी चर्चा इस प्रकार आयी है—

जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी॥

तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ सारथी।

(रा०च०मा० १।८१।३, पार्वती-मंगल १३)

लगन—वर और कन्याके विवाहादि कृत्योंके तिथि, दिन, घड़ी और नक्षत्रके लेखनको लगन कहते हैं। यह लगन कन्या-पक्षके पुरोहितद्वारा विचारकर लिखी जाती है, जो विवाहसे कुछ दिन पूर्व ही वरके घर भेज दी जाती है। 'हिमवान्' के द्वारा लगन भेजने और शंकर-पक्षमें उसके पढ़े जानेकी चर्चा 'मानस' में प्राप्त है—

सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई॥

लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई॥

(रा०च०मा० १।९१।४, ७)

इसके अतिरिक्त 'मानस', 'गीतावली' और 'जानकी-मंगल' में सीता-विवाह-सम्बन्धी लगनके भी दर्शन होते हैं—

ललित लगन लिखि पत्रिका।

उपरोहितके कर जनक-जनेस पठाई॥

(गीतावली, बालकाण्ड १०३।१)

कलश-स्थापना—विवाहादि शुभ कार्य निर्विघ्न पूर्ण हों, इसलिये गणेश-गौरीकी पूजा अनिवार्य मानी जाती है। तुलसी-साहित्यमें कलश-स्थापना और गणेश-गौरी-पूजनका चित्रण कई स्थलोंपर हुआ है—

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे॥

सजहिं सुमंगल कलस बितान बनावहिं।

कुँवर कुँवरि हित गनपति गौरि पुजावहिं॥

(रा०च०मा० १।३२४।५, जानकी-मंगल दोहा ११८।१४३)

मण्डप या माड़व—विवाहके लिये मण्डप या

माड़व बनवाया जाता है, जिसमें कदलीके खम्भों और हरे बाँसका प्रयोग किया जाता है। मण्डपके अन्दर 'वेदी' का निर्माण किया जाता है। इस मण्डपका निर्माण कन्याके घरमें होता है और कहीं-कहीं कन्या और वर दोनोंके घरोंमें होता है। 'मानस' में मण्डपका वर्णन इस प्रकार है—

मंडपु बिलोकि बिचित्र रचनाँ रुचिरताँ मुनि मन हरे।

बारात—वर-पक्षकी ओरसे कन्याके घर विवाहहेतु जन-समूहके साज-सज्जासहित प्रस्थानको बारात कहा जाता है। गोस्वामीजीने पार्वती और जानकीजीके विवाहमें अनेक स्थलोंपर बारातकी चर्चा की है, यथा—

जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता॥
प्रथम बरात लगन तें आई। तातें पुर प्रमोदु अधिकाई॥

अगवानी—जब वरयात्रा कन्या-पक्षके यहाँ पहुँच जाती है तो कन्या-पक्षकी ओरसे जन-समुदायद्वारा आकर बरातियोंका स्वागत करना अगवानी कहा जाता है। गोस्वामीजीने अगवानीका सुन्दर चित्रण किया है—

करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥

शान्तिपाठ—वैवाहिक कार्यक्रम निर्विघ्न पूर्ण हो जाय, इसलिये अनेक देवी-देवताओंकी उपासना तथा विघ्न उत्पन्न करनेवाले तत्त्वोंकी शान्तिके लिये प्रार्थना की जाती है—

समयँ समयँ सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला॥

अर्घ्य—बारात पहुँचनेपर कन्याके द्वारपर दूल्हेकी आरती की जाती है और जलसे अर्घ्य देकर उसे मण्डप ले जाया जाता है—

करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा॥

मधुपर्क—मधु, शक्कर, घी आदिसे निर्मित मधुपर्कसे बारातके आगमनपर उसका स्वागत किया जाता है। गोस्वामीजीने भी बारातके स्वागतार्थ मधुपर्कके प्रयोगका उल्लेख किया है—

मधुपर्क मंगल द्रब्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं॥

(रा०च०मा० १। ३२३। छं० १)

परछन—कन्याके द्वारपर बारात पहुँचनेपर आरती सजाकर दूल्हेकी पूजा और फिर जब वधूसहित बारात वापस वरके घर पहुँचती है तो वरके द्वारपर आरती आदिसे वधूकी पूजा करके पालकीसे वधूके उतारनेको परछन कहते हैं।

सासु उतारि आरती करहिं निछावरि।
मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार॥

(जानकी-मंगल १६५, रा०च०मा० १। ३४८)

शाखोच्चार—विवाहके समय भाँवरीसे पूर्व मण्डपके नीचे वर और कन्या-पक्षके पुरोहित क्रमश: वर और कन्याके कुलकी एकाधिक पीढ़ियोंका वर्णन करते है। 'गीतावली' में शाखोच्चारका वर्णन द्रष्टव्य हुआ है—

इत वसिष्ठ मुनि, उतहि सतानँद, बंस बखान करैं दोउ ओरी।
इत अवधेस, उतहिं मिथिलापति, भरत अंक सुखसिंधु हिलोरी॥

(बालकाण्ड १०५। ४)

कन्यादान, पाणिग्रहण—मण्डपमें वेदीपर भाँवरसे पूर्व कन्याके पिताद्वारा वरको कुल और शास्त्रकी रीतियोंके अनुसार अपनी कन्या समर्पित करना कन्यादान कहा जाता है। पति या वर कन्याके हाथको पकड़ता है, जिसे पाणिग्रहण कहते हैं—

भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं॥

× × ×

करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो॥

(रा०च०मा० १। ३२४। छं० ३)

लावा—अग्निकी प्रदक्षिणाके समय कन्याका भाई कन्याकी गोदमें धानका लावा भरता है। यह कार्य भाँवरके समयका है। गोस्वामीजीने पार्वती-मंगल (दोहा १३१)-में भाँवरसे पूर्व लावा-विधानका चित्रण किया है—

लावा होम बिधान बहुरि भाँवरि परी॥

सिन्दूर-वन्दन—भाँवरके समय लावाकी भाँति सिन्दूर-वन्दन या माँग भरनेका भी विधान है। जिसमें वर-वधूकी माँग भरता है। सिन्दूर-वन्दनका गोस्वामीजीने इस प्रकार चित्रण किया है—

राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥

भाँवरी—यह विवाहका मुख्य कार्य है। वर-वधू गाँठ बाँधकर 'सप्तपदी' के अन्तर्गत सात बार प्रदक्षिणा करते है। इस प्रदक्षिणामें वर-वधू अग्निको साक्षी मानकर अपने सम्बन्धोंको स्वीकार करते है। 'मानस' और 'गीतावली' में सीता-रामकी भाँवरकी चर्चा इस प्रकारसे की गयी है—

कनककलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भइ भोरी॥

(बालकाण्ड १०५।३)

कोहबर—कन्याके घरमें जिस स्थानपर कुलदेवता प्रतिष्ठित होते हैं, उसे कोहबर कहते हैं। भाँवरिके बाद वर-वधूको कोहबरमें ले जानेकी परम्परा है। वहाँ देव-पूजनके बाद लोकाचारकी कुछ अन्य प्रथाओंका निर्वाह होता है—

तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

लहकौरि—कोहबरमें पहुँचकर वर और वधूका परस्पर मुँह मीठा कराना या ग्रास लेना लहकौर कहा जाता है। कोहबरमें स्त्रियाँ वर-वधूको एक-दूसरेको खिलानेका सन्देश देते हुए हास-परिहास करती हैं इस प्रथाका भी मानसमें वर्णन हुआ है—

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं॥

(रा०च०मा० १।३२७।छं० २)

जुआ खेलना—लहकौरि उपरान्त कोहबरमें वर-वधूको जुआ खेलानेकी प्रथा है। जुआके समय मंगल गारी और हास-परिहास भी खूब किया जाता है। 'जानकी-मंगल' और 'पार्वती-मंगल' में इस रीतिको गोस्वामीजीने चित्रित किया है। जानकी-मंगल (दोहा १५०)-में वर्णित यह प्रथा द्रष्टव्य है—

जुआ खेलावन कौतुक कीन्ह सयानिन्ह।
जीति हारि मिस देहिं गारि दुहु रानिन्ह॥

जेवनार और गारी—गारी विवाहके समयका प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण कार्य है। विवाह-सम्बन्धी रीतियोंमें गारी गाना एक विशेष प्रथा है। गोस्वामीजीने गारीके साथ-साथ जेवनार अर्थात् भोजन करनेको सन्तुलित रूपमें प्रस्तुत किया है। 'पार्वती-मंगल' 'जानकी-मंगल' दोनोंमें ही जेवनार और गारीका सुन्दर चित्रण है। मानसमें शिव-विवाहके अवसरपर जेवनार और गारी-गानका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं॥
नारिबृंद सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी॥

(रा०च०मा० १।९९।छं०, ९९।८)

विदा और दहेज—कन्याका पिता विवाहोपरान्त बारातको कन्यासहित कन्याके पतिगृहके लिये विदा करता है। कन्याके विदा होनेके अवसरपर उपस्थित सभी लोगोंके कण्ठ अवरुद्ध हो जाते हैं। यह स्थिति माता-पिता और कन्याके लिये बड़ी पीड़ादायक होती है। सीताजीको विदा करते हुए महाराज जनक किस प्रकार विचलित होते हैं, इसका चित्रण गोस्वामीजीने किया है—

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की॥

(रा०च०मा० १।३३८।५-६)

कन्याके विदाके अवसरपर कन्याको जो उपहार-स्वरूप वस्तुएँ दी जाती हैं, उसे दहेज कहते हैं। गोस्वामीजी पार्वतीजीके विवाहमें दहेजके रूपमें दिये गये वस्त्र-आभूषण, दास-दासियाँ, हाथी, घोड़ा, रथ, बर्तन, गाय, अन्न आदिका चित्रण करते हैं—

दासीं दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा॥
अन्न कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

(रा०च०मा० १।१०१।७-८)

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि गोस्वामीजी समन्वयवादी लेखकके साथ-साथ सामाजिक लोकरीतिके संरक्षक कवि भी हैं। गोस्वामीजीका लेखन स्वयंमें अद्वितीय है। उन्होंने भावनाओं, संस्कारोंकी सुन्दर प्रस्तुति अपने साहित्यमें दी है। विवाह-जैसे संस्कारपर उनका वृहद् लेखन उनकी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिका परिचायक है।

साधन-सूत्र

मैं किसको पुकारूँ नाथ!

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

परमार्थके मार्गमें आर्तभावसे पुकारनेका बड़ा महत्त्व है। जब हम दुखी होकर भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं, उनको दीन-हीन होकर पुकारते हैं तो करुणाके सागर भगवान् उस प्रार्थना या पुकारको सुनते हैं। जितनी आकुलतासे हमारी पुकार होती है, उतनी ही व्याकुलतासे परमात्माका उत्तर मिलता है। संतोंने कहा है—

केसव कहि कहि कूकिये, ना कूकिये असार।
रात दिवस के कूकते, कबहुँ तो सुनै पुकार॥

भगवान् सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वसमर्थ हैं और सबके सुहृद हैं, वे हमारी आर्तपुकारसे कैसे चुप रह सकते हैं? वे तो जीवमात्रपर दयाका भाव रखते हैं और फिर कोई उनका ही होकर उन्हें पुकारता है तो वे किसी भी रूपमें हमारी सहायता या रक्षा करते हैं।

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—'उत्तम कर्म करनेवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मुझको भजते हैं।' (गीता ७।१६) आर्त-भावसे पुकारनेका मार्मिक दृष्टान्त द्रौपदीके चीर-हरणका प्रसंग है, जब दुष्ट दु:शासन दुर्योधनके आदेशसे एकवस्त्रा द्रौपदीको सभामें घसीटते हुए लाकर बलपूर्वक उसको निर्वस्त्र करने लगा। द्रौपदीने अपनेको सर्वथा असहाय समझकर अपने परम सहायक, परमबन्धु परमात्माको स्मरण किया—'हे गोविन्द! हे द्वारकावासिन्! हे गोपीजनप्रिय! हे केशव! क्या तुम नहीं जान रहे हो कि कौरव मेरा तिरस्कार कर रहे हैं? हे नाथ! हे लक्ष्मीनाथ! हे व्रजनाथ! हे दु:खनाशन! हे जनार्दन! कौरव-समुद्रमें डूबती हुई इस द्रौपदीको बचाओ! हे कृष्ण! हे महायोगिन्! हे विश्वात्मन्! हे गोविन्द! हे विश्वभावन! कौरवोंके हाथमें पड़ी हुई इस दु:खिनीकी रक्षा करो।' (महाभारत सभापर्व ६७।४१-४४) द्रौपदीकी पुकार सुनते ही जगदीश्वर भगवान्‌का हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने वस्त्रावतार धारण करके द्रौपदीकी रक्षा की।

ऐसा ही एक और करुण प्रसंग परीक्षित्‌की माता उत्तराका है। द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने विचार कर लिया था कि मैं पाण्डवोंका वंश नष्ट कर दूँगा। उसने सोते हुए द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको मार डाला। अब केवल उत्तराके गर्भमें एक बालक रह गया। उसको भी नष्ट करनेके लिये अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र चलाया। जब उत्तराने उसको अपनी ओर आते देखा तो भगवान्‌को पुकारा—'देवाधिदेव! जगदीश्वर! महायोगिन्! आप मेरी रक्षा कीजिये! रक्षा कीजिये! आपके सिवाय इस लोकमें मुझे अभय देनेवाला दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि यहाँ सभी आपसमें एक-दूसरेकी मृत्युका कारण बन रहे हैं। प्रभो! सर्वशक्तिमान्! यह दहकता हुआ लोहेका बाण मेरी तरफ दौड़ा आ रहा है। स्वामिन्! यह मुझे भले ही जला डाले, पर मेरे गर्भको नष्ट न करे।'

उत्तराकी पुकार सुनते ही भगवान्‌ने सुदर्शनचक्र धारण कर लिया और सूक्ष्म-रूप धारण करके गर्भस्थ शिशुके चारों ओर घूमने लगे। इससे ब्रह्मास्त्र गर्भस्थ शिशुका कुछ भी बिगाड़ नहीं सका और शान्त हो गया। भगवद्भक्तोंके ऐसे अनगिनत दृष्टान्त हैं, जहाँ आर्त-भावसे पुकारनेपर भगवान्‌ने शरणागतकी रक्षा की।

इसमें तीन बातें महत्त्व की हैं—

१. हे नाथ! मैं आपका हूँ!

सर्वप्रथम! हम इस बातको दृढ़तासे स्वीकार करें कि हे नाथ! मैं आपका हूँ! भगवान्‌ने गीतामें कहा भी है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(गीता १५।७)

अर्थात् 'इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।' हम अपनेको संसारका मानते हैं, इसलिये भगवान्‌से हमारी आत्मीयता नहीं होती है। वस्तुत: हम भगवान्‌के ही हैं—

सब मम प्रिय सब मम उपजाए।

(रा०च०मा० ७।८६।४)

अर्थात् 'सभी जीव मुझे प्रिय हैं; क्योंकि सभी मेरे उत्पन्न किये हुए हैं।'

जबतक हम किसीके होकर नहीं रहेंगे तो हमें उसका अपनत्व कैसे मिलेगा? पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी पुत्र होता है, ऐसे ही हम भगवान्‌को ही अपना सर्वस्व मानेंगे, जो कि यथार्थ बात है, तभी उनकी पूरी कृपादृष्टि हमें प्राप्त होगी। वे हमारे माता, पिता, बन्धु, सखा, विद्या, द्रव्य और सर्वस्व हैं।

साधकका सदैव यह भाव रहना चाहिये कि मैं सर्वप्रथम परमात्माका हूँ। सबसे पहले हम भगवान्‌के हैं। माता-पिताके होनेसे पहले भी हम भगवान्‌के हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि भगवान्‌के होते हुए ही हैं। संसारके तो हम बने हैं, पर भगवान्‌के स्वतः हैं।

२. हे नाथ! मैं आपकी शरणमें हूँ!

अर्जुन भगवान्‌के सखा थे और उन्हें अपना मानते थे। भगवान्‌ने पाण्डवोंकी अनेक अवसरोंपर रक्षा भी की, किंतु फिर भी महाभारतके युद्धके समय अर्जुनको स्वजनोंका मोह व्याप्त हो गया। जब उन्होंने भगवान्‌की शिष्यता स्वीकार की, तभी उन्हें परम ज्ञानकी प्राप्ति हुई—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २।७)

'इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।'

कई बार हम गुरु अथवा आचार्यको अपना मानते हैं, किंतु उनकी वाणीका आदर नहीं करते हैं, उनके सिद्धान्तोंपर आचरण नहीं करते हैं तो हमें विशेष लाभ नहीं होता है। पूर्ण लाभ प्राप्त करनेके लिये सिर्फ किसीका होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसे अपना इष्ट मानते हुए, उसमें पूज्यभावका आरोपण करते हुए उसका पूर्ण आश्रय लेना आवश्यक है। भगवान्‌से बड़ा, सच्चा, पक्का और अनन्य आश्रय और कौन हो सकता है? शरणागतका सदैव यह भाव रहना चाहिये—

चिन्ता दीनदयाल को मो मन सदा आनन्द।
जायो सो प्रतिपालसी, 'राम दास' गोबिन्द॥

ऐसा शरणागतिका दृढ़ भाव रखते हुए तथा परमात्माको पूर्ण समर्पण करते हुए हमें निश्चिन्त हो जाना चाहिये।

३. हे नाथ! हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं!

हम भगवान्‌के हो गये हैं, हमने भगवान्‌की शरण ले ली है; अब तीसरी विशेष बात है कि हम सदैव उनका स्मरण करते रहें, उनको कभी भूलें नहीं। जीव जब भगवान्‌के सम्मुख होता है तो उसके दोष दूर होने लगते हैं और जब वह भगवान्‌से विमुख होता है तो अनेक दोष उसमें घर करने लगते हैं। भगवान्‌से अपनत्व, शरणागति एवं उनके सतत स्मरणका विलक्षण प्रभाव ही ऐसा है कि व्यक्तिके स्वभावमें स्वतः ही काट-छाँट शुरू हो जाती है। ऐसा व्यक्ति भगवान्‌की कृपादृष्टिका पात्र हो जाता है तथा उसपर भगवान्‌का विशेष भाव हो जाता है। उस भावसे भावित वह परम आनन्दमें रहता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा भी है—'जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें लगे हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

अतः किसी भी समय हम भगवान्‌को भूलें नहीं, अपने समस्त कर्तव्य-कर्मोंको उन्हें अर्पित करते हुए केवल एक उनकी ही शरणमें रहें तथा अपने दुःख-दोषोंके निवारणके लिये उन्हींसे प्रार्थना करें कि हे नाथ! मैं किसको पुकारूँ! आप ही मेरे हो, आपके सिवाय मेरा कोई नहीं—

आप कृपा को आसरो, आप कृपा को जोर।
आप बिना दीखै नहीं, तीन लोक में और॥

श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग—

श्रीमद्रामेश्वरम्

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

समुद्रके अधिष्ठातृदेवके निर्देशानुसार सेतु-निर्माणका कार्य आरम्भ हो गया। सौ योजन सेतुके लिये कपि सुभट दूर-दूरसे पर्वतोंकी शिलाएँ उखाड़-उखाड़कर लाने लगे। विश्वकर्मा-अंशोत्पन्न वानरवीर नल सेनापति नीलके साथ अन्यान्य वानर-वीरोंके संकल्पित सहयोगसे निर्माण-कार्यमें संलग्न हो गये। विश्वके नेत्रोंको चकित कर देनेवाला एक अकल्पित स्वप्न मात्र आठ दिवसोंमें धरतीपर साकार अवतरित हो गया। होता भी क्यों नहीं, जब प्रकाशके लिये केवल भगवान् भुवनभास्कर सूर्यदेवके रश्मि-समूहोंपर आश्रित न होकर, वीरवर लक्ष्मणके अग्निबाणोंने दीप्त दीप-दण्डिकाओंके रूपमें पंक्तियोंकी पंक्तियाँ लगाकर घोर तमिस्राको अनन्त पूर्णिमाओंकी प्रदीप्तिसे विभूषित विभावरी जो बना दिया था। दूर खड़े निशाचर-समूह असहायावस्थामें निर्माण-कार्यको ताकते तो रहे, किंतु प्राणोंकी बाजी लगाकर भी उन लक्ष्मण-रेखाओंको लाँघनेका साहस तो न जुटा पाये। अतः कार्य निर्विघ्नरूपेण सम्पादित हो गया। सेतुका निरीक्षणकर राघवेन्द्रने महर्षि अगस्त्यसे परामर्शकर वहाँ भगवान् शंकरके श्रीविग्रहकी स्थापनाका निश्चय व्यक्त किया। अंजनीनन्दन हनुमान् कैलाससे भगवान् पशुपतिका दिव्य विग्रह लेने चल पड़े। निश्चित मुहूर्त व्यतीत होता देखकर राघवेन्द्रने समुद्र-तटकी बालुकाको एकत्रितकर, उन्हें प्राण-प्रतिष्ठित कर दिया।

वैदिक विधि-विधानसे संस्थापना, पूजन-अर्चनके उपरान्त श्रीराम बोले कि 'यह मुझ दाशरथि रामके परमाराध्य भगवान् शंकरका ज्योतिर्लिंग, भविष्यमें रामके ईश्वर 'श्रीरामेश्वरम्' के नामसे प्रसिद्ध होगा।' तभी आकाशमण्डलमें एक मधुर स्वर गूँजने लगा, 'यह लिंग-विग्रह उस शंकरका है, जिसके ध्येय नीलाम्बुज-श्यामल सुस्मित स्वयं श्रीराम हैं। अतः 'शिवके ईश्वर' श्रीरामद्वारा प्रस्थापित इस लिंग-विग्रहकी संज्ञा श्रीरामेश्वरम् ही होगी।'

इस अवसरपर समुपस्थित अनेकानेक ऋषि-मुनियोंसहित समस्त जन असमंजसमें पड़ गये। वे कहने लगे कि इन्हें श्रीरामेश्वरम् तो निर्विवादरूपेण कहेंगे, किंतु किसकी व्याख्याके अनुसार, किनकी परिभाषाके आधारपर? इस मृदुल-मंजुल ऊहापोहका समापन करनेवाली महर्षि अगस्त्यकी मनोहर वाणी गूँज उठी कि 'जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम एवं गंगाधर शशांकमौलि भगवान् शंकरका मंगलमय समागम हो रहा है, वे श्रीमद्रामेश्वरम्‌की उपाधिसे विभूषित होकर, इसी नामसे कल्प-कल्पमें सम्पूजित रहेंगे। यह महाकालका पावन तीर्थ, तीर्थस्थानोंकी प्रथम पंक्तिमें सदैव सर्वमान्य रहेगा। उत्तराखण्डप्रसूता भगवती गंगाके जलसे प्रहर्षित होनेवाले ये देवभूमि भारतवर्षकी सांस्कृतिक एकता-अखण्डताका उद्घोष करते हुए आशुतोष युग-युगमें जन-जनका कल्याण करेंगे। लौकिक-पारलौकिक ऐश्वर्य-वैभव प्रदान करेंगे। इसके अतिरिक्त कपिवर नलके नेतृत्वमें निर्मित इस सेतुके स्वामी भी ये ही त्रिलोचन पार्वतीश्वर हैं। अतः वे सेतुपति श्रीमद्रामेश्वरम् कहलायेंगे।'

'नहीं-नहीं, 'सेतुपति' शब्द भुजंगभूषणको अहंकारकी दलदलमें दल डालेगा। अतः मैं इस सेतुसे अवश्यमेव संयुक्त रहूँगा, किंतु पति या स्वामी बनकर नहीं, बन्धु बनकर। अतः मुझे 'सेतुबन्धु श्रीमद्रामेश्वरम्' ही कहा जाय।'

किसमें साहस था कि वह महादेवके इन आदेशात्मक शब्दोंका विरोध क्या उसपर टीका-टिप्पणी भी करता।

'सेतुबन्धु श्रीमद्रामेश्वरम्‌की जय जय जय' से दशों दिशाएँ गूँज उठीं।

धर्मानुष्ठानोंमें श्राद्ध, पिण्डदान और गया

(डॉ० श्रीराकेशकुमारजी सिन्हा 'रवि', एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट०)

इस भू-लोकपर जो आता है, वह अवश्य ही एक निश्चित अवधिके बाद धरतीसे चला जाता है। जीवके आनेकी प्रक्रिया 'जन्म' और जानेकी विधिको 'मृत्यु' कहा जाता है। मृत्युके बाद और जन्मसे पहले मानव (जीव)-मात्रका तरण-तारण जिन तीन कृत्योंसे होता है—वे हैं तर्पण, श्राद्ध और पिण्डदान। ऐसे तो सम्पूर्ण भारतीय भू-भागमें कितने ही तीर्थ-स्थानोंपर, नदी-किनारे, सरोवरोंके तटपर, वृक्षके नीचे, अरण्यादि क्षेत्रमें, पर्वतादि क्षेत्र एवं नदी-संगममें श्राद्ध-पिण्डदानके विधान हैं, पर पुराणोंमें वर्णित तथ्योंके आलोकमें यह कहना एकदम सहज जान पड़ता है कि श्राद्ध-पिण्डदानके निमित्त सर्वाधिक उत्तमोत्तम स्थान अगर कोई है तो वह है—गया। श्रद्धा एवं विश्वासका यह सूत्र आदिकालसे इस धरतीपर पल्लवित है, तभी तो गया को 'गयाजी' कहा जाता है।

अट्ठारह पुराणोंमें आधे-से-अधिकमें श्राद्ध, पिण्डदान एवं गया-माहात्म्यकी चर्चा है। बिहार राज्यमें स्थित गया राजधानी पटनासे तकरीबन एक सौ किलोमीटर दूरीपर पितृतोया फल्गुके किनारे युगों-युगोंसे विराजमान है। गरुडपुराणकी पंक्ति है कि पृथ्वीके सभी तीर्थोंमें गया सर्वोत्तम है—'**पृथिव्यां सर्वतीर्थेभ्यो यथा श्रेष्ठा गयापुरी।**' तो वायुपुराण स्वीकार करता है कि गयामें ऐसा कोई स्थान नहीं, जो तीर्थ न हो—

गयायां न हि तत् स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते।
सान्निध्यं सर्वतीर्थानां गयातीर्थं ततो वरम्॥

गयामें पिण्डदानके लिये कोई भी काल निषिद्ध नहीं है—'**गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद् विचक्षणः।**' बुद्धिमान्‌को सभी समय एवं हरेक कालमें यहाँ पिण्डदानका विधान है और-तो-और अधिकमासमें, जन्मदिनमें, गुरु-शुक्र अस्त होनेमें, सिंह राशिके बृहस्पतिमें भी गयामें पिण्ड निषेध नहीं है—

अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयोः॥
न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ।

(वायुपुराण १०५। १८-१९)

गयामें पिण्डदान करनेके लिये छः मासका विशेष माहात्म्य है—मीन, मेष, कन्या, धनु, कुम्भ और मकर—इन राशियोंपर जब सूर्य हों, उस समय तीनों लोकोंके लोगोंके लिये गयामें पिण्डदान करना दुर्लभ है—

मीने मेषे स्थिते सूर्ये कन्यायां कार्मुके घटे।
गयायां दुर्लभं लोके वदन्ति ऋषयः सदा॥
मकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयाश्राद्धं सुदुर्लभम्॥

(वायुपुराण १०५। ४७-४८)

गयातीर्थकी कथा परम वीर्यवान् वैष्णव असुर 'गय' से सम्बद्ध है, जिसकी मुक्ति यज्ञोपरान्त श्रीविष्णुके

गदाधररूपसे स्थित होनेसे हुई, जो एक सौ योजन लम्बा और साठ योजन चौड़ा था। यज्ञ और तपसे 'गय' का शरीर परम पवित्र हो गया, जहाँ कोटि-कोटि तीर्थ एवं देवताओंका स्थान है और तभीसे भगवान् गदाधरके रूपमें यहाँपर स्थित होकर भक्तोंके समस्त मनोरथोंको

पूर्ण कर रहे हैं। गयामें श्राद्ध करनेसे ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णकी चोरी, गुरुपत्नीगमन और उक्त संसर्गजनित सभी महापातक नष्ट हो जाते हैं—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
पापं तत्संगजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति॥

(वायुपुराण ४३। १२)

गयातीर्थका कुल परिमाण पाँच कोश है और गयाशिर एक कोशका है। यहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंको शाश्वत तृप्ति हो जाती है—

पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः।
यत्र पिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती॥

गया आनेमात्रसे ही व्यक्ति पितृ-ऋणसे विमुक्त हो जाता है—

गयागमनमात्रेण पितॄणामनृणो भवेत।

गयाजीमें जहाँ-जहाँ पितरोंकी स्मृतिमें पिण्डार्पित किया जाता है, उसे 'पिण्डवेदी' कहा गया है। विवरण है कि पहले गया-श्राद्धमें कुल पिण्डवेदियोंकी संख्या ३६५ थी, पर वर्तमानमें इनकी संख्या पचासके आसपास ही शेष है और इनमें श्रीविष्णुपद, फल्गु नदी और अक्षयवटका विशेष मान है। गयाधामकी अन्य पिण्डवेदियोंमें आदिगया, प्रेतशिला, रामशिला, वैतरणी, उत्तरमानस, दक्षिणमानस, ब्रह्मकुण्ड, ब्रह्मयोनि, सीताकुण्ड, रामकुण्ड, सोलहवेदी, मुण्डपृष्ठ, गायत्रीघाट, दधिकुल्या, मधुकुल्या, काकबलि, धौतपद आदिका नाम आता है।

मानव जीवनपर्यन्त जिन तीन ऋणोंसे आबद्ध रहता है, उसमें पितृ-ऋणसे उत्ऋण होनेका एकमेव साधन गयाश्राद्ध है तभी तो 'मत्स्यपुराण' में गयाको 'पितृतीर्थ' की संज्ञासे विभूषित किया गया है। गयामें श्राद्ध-पिण्डदानकी परम्परा युगयुगीन है, जहाँ देववृन्द, ऋषि-मुनि एवं साधु-सन्तोंसे लेकर राजाओं-महाराजाओं एवं आमजनोंने श्राद्ध-पिण्डदानकर एक आदर्श कायम किया है।

हिन्दू-धर्मग्रन्थोंके अनुसार प्रत्येक गृहस्थ हिन्दूको पाँच यज्ञोंको अवश्य करना चाहिये। जिसे 'पंच-महायज्ञ' भी कहा गया है। ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), पितृयज्ञ (पिण्डक्रिया), देवयज्ञ (होम), भूतयज्ञ (बलिवैश्व-देव) और मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सत्कार)—इनमें पितृयज्ञका सर्वोत्तम स्थल गया है। ऐसे तो गयामें सालोंभर श्राद्ध, पिण्डदान-जैसा धर्मानुष्ठान होता रहता है, पर वर्षका एक पक्ष जिसे पितृपक्ष कहा जाता है, जो आश्विन माहका कृष्णपक्ष है; इसमें यहाँ इस कार्यके वास्ते दूर-देशके लोगोंका आगमन होता है। आज भी भक्तगण कहीं भी श्राद्ध करते हैं तो उनका यही संकल्प होता है—'**गयायां दत्तमक्षय्यमस्तु!**' अर्थात् इसे गयामें दिया गया समझिये। कई अर्थोंमें गयाको मध्यका धाम कहा गया है, जो चारों दिशाओंके चार धामके मध्य भागमें शोभायमान है।

पुत्रकी पुत्रता तीन प्रकारसे ही सिद्ध होती है, इस सन्दर्भमें शास्त्रीय कथन है—

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥

(श्रीमद्देवीभागवत ६। ४। १५)

अर्थात् जीते-जी पिताके वचनका पालन करना, मृत्यु हो जानेपर उनके श्राद्धमें प्रचुर भोजन कराना और गयामें पिण्डदान करना—इन तीनों कार्योंसे ही पुत्रका पुत्रत्व सिद्ध होता है। सचमुच शाश्वत मुक्तिका मार्ग गयाश्राद्धके उपरान्त ही प्रशस्त होता है। बगैर गया-श्राद्धके प्राणी मोक्षाधिकारी हो ही नहीं सकता, तभी तो आमजनोंके मध्य गया स्वर्ग जानेकी आरक्षण-स्थलीके रूपमें प्रसिद्ध है। गरुडपुराणकी पंक्ति है कि पितृपक्षके दिनोंमें समस्त ज्ञात-अज्ञात पितर अपने-अपने परिजनों खासकर पुत्र-पुत्रादिकोंसे अन्न-जलकी आशामें फल्गुके तटपर आ विराजते हैं और अपने लोगोंको परम आशीर्वाद प्रदान करते हैं। इसके विपरीत जो श्राद्ध-तर्पण नहीं करते, उन्हें शाप देकर पितरलोक चले जाते हैं।

अस्तु! स्पष्ट हो जाता है कि इहलोकमें श्राद्ध-पिण्डदानका सर्वोत्कृष्ट स्थल गयाजी है। पितरोंको अक्षय तृप्तिकी संप्राप्ति गयामें ही होती है। यही कारण है कि हरेक वर्ष पितृपक्षमें यहाँ आकर लाखों लोग पितृ-ऋणसे उत्ऋण हो, जीवन-पथ प्रकाशित बनाते हैं।

सच्चा जीवन-दर्शन

(श्रीराजेशजी माहेश्वरी)

मैं और मेरा मित्र सतीश, हम दोनों आपसमें चर्चा कर रहे थे। हमारी चर्चाका विषय था—हमारा जीवन-क्रम कैसा हो? हम दोनों इस बातपर एकमत थे कि मानव प्रभुकी सर्वश्रेष्ठ कृति है और हमें अपने तन और मनको तपोवनका रूप देकर जनहितमें समर्पित करनेहेतु तत्पर रहना चाहिये। हमें औरोंकी पीड़ाको कम करनेका भरसक प्रयास करना चाहिये। हमें माता-पिता और गुरुओंका आशीर्वाद लेकर जीवनकी राहमें आगे बढ़ना चाहिये। मनसा वाचा कर्मणा सत्यमेव जयते और सत्यं शिवं सुन्दरम् आदिका जीवनमें समन्वय हो, तभी हमारा जीवन सार्थक होगा और हम समृद्धि, सुख एवं वैभव प्राप्त करके धर्मपूर्वक कर्म कर सकेंगे।

एक दिन सतीश सुबह-सुबह ही सूर्योदयके पूर्व मेरे निवासपर आ गया और बोला—चलो, नर्मदामैयाके दर्शन करके आते हैं। मैं सहमति देते हुए उसके साथ चल दिया, लगभग आधे घण्टेमें हमलोग नर्मदातटपर पहुँच गये। हमने रवाना होनेके पहले ही अपने पण्डाजीको सूचना दे दी थी कि हम कुछ ही देरमें उनके पास पहुँच रहे हैं। वे वहाँपर हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे।

'चरण-स्पर्श पण्डितजी!'

'सदा सुखी रहें जजमान! आज अचानक यहाँ कैसे आना हो गया?'

'कुछ नहीं। ऐसे ही नर्मदाजीके दर्शन करने आ गये। सोचा आपसे भी मुलाकात हो जायगी। पण्डितजी आज आप हमें किसी ऐसे स्थानपर ले चलिये, जहाँ बिलकुल हल्ला-गुल्ला न हो। केवल शान्ति और एकान्त हो। सिर्फ हम हों और नर्मदामैया हों।'

'पूजा-पाठ और स्नान-ध्यानका सामान साथमें रख लें?'

'नहीं, हमलोग सिर्फ नर्मदामैयाके दर्शन करनेका संकल्प लेकर आये हैं।'

उत्तर सुनकर पण्डितजी हमें लेकर आगे-आगे चल दिये। वे हमें एक ऐसे घाटपर ले गये, जहाँ पूर्ण एकान्त था और हम तीनोंके अलावा वहाँ कोई नहीं था।

नर्मदाका विहंगम दृश्य हमारे सामने था। सूर्योदय होने ही वाला था। आकाशमें लालिमा छायी हुई थी। पक्षी अपने घोंसलोंको छोड़कर आकाशमें उड़ानें भर रहे थे। क्षितिजसे भगवान् भुवनभास्कर झाँकने लगे थे। उनका दिव्य आलोक दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। हम अपने अन्दर एक अलौकिक आनन्द एवं ऊर्जाका संचार अनुभव कर रहे थे। हमें जीवनमें एक नये दिनके प्रारम्भकी अनुभूति हो रही थी।

हमारी दृष्टि दाहिनी ओर गयी, वहाँके दृश्यको देखकर हम रोमांचित हो गये। हम जहाँ खड़े थे, वह एक श्मशान था। पिछले दिनों वहाँ कोई शवदाह हुआ था। चिताकी आग ठण्डी पड़ चुकी थी। राखके साथ ही मरनेवालेकी जली हुई अस्थियाँ अपनी सद्गतिकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

सतीश भी इस दृश्यको देख चुका था। वह आकाशकी ओर देखकर कह रहा था—प्रभु! मृतात्माको शान्ति प्रदान करना।

मेरे मनमें कल्पनाओंकी लहरें उठ रही थीं। मन कह रहा था—अथक प्रयासके बावजूद भी उसके घरवाले एवं रिश्तेदार विवश और लाचार हो गये होंगे और उस व्यक्तिकी साँसें समाप्त हो गयी होंगी। साँसोंके चुकनेके बाद तो औपचारिकताएँ ही रह जाती हैं। जो यहाँ आकर पूरी होती हैं।

हम अपने विचारोंमें खोये हुए थे कि वहाँ कुछ दूरपर हमें एक संत शान्त मुद्रामें बैठे दिखलायी दिये। हम न जाने किस आकर्षणमें उनकी ओर खिँचे चले गये। उनके पास पहुँचकर हमने उनका अभिवादन किया और उनके सम्मुख बैठ गये। उन्हें हमारे आनेका

आभास हो गया था। वे आँखें खोलकर हमारी ही ओर निर्विकार भावसे देख रहे थे। उनकी आँखें जैसे हमसे पूछ रही थीं—कहिये, कैसे आना हुआ?

महाराज! यह दुनिया इतने रंगोंसे भरी हुई है। जीवनमें इतना सुख, इतना आनन्द है। आप यह सब छोड़कर इस वीरानेमें क्या खोज रहे हैं?

वे बोले—यह एक जटिल विषय है। संसार एक नदी है, जीवन है नाव, भाग्य है नाविक, हमारे कर्म हैं पतवार, तरंग एवं लहर हैं सुख, तूफान और भँवर हैं दु:ख, पाल है भक्ति, जो नदीके बहाव एवं हवाकी दिशामें जीवनको आगे ले जाती है। नावकी गतिको नियन्त्रित करके बहाव और गन्तव्यकी दिशामें समन्वय स्थापित करके जीवनकी सद्‌गति एवं दुर्गति भाग्य, भक्ति, धर्म एवं कर्मके द्वारा निर्धारित होती है। यही हमारे जीवनकी नियति है। इतना कहकर वे नर्मदासे जल लानेके लिये घाटसे नीचेकी ओर उतर गये।

हम समझ गये कि वे संन्यासी हमसे आगे बात नहीं करना चाहते थे। हम भी उठकर वापस जानेके लिये आगे बढ़ गये। श्मशानसे बाहर भी नहीं आ पाये थे कि श्मशानसे लगकर पड़ी जमीनपर कुछ परिवार झोपड़े बनाकर रहते दिखलायी दिये।

वे साधनविहीन लोग अपने सिरको छुपानेके लिये कच्ची झोपड़ी बनाकर रह रहे थे। उनका जीवन-स्तर हमारी कल्पनाके विपरीत था। उन्हें न ही शुद्ध पानी उपलब्ध था और न ही शौच आदि नित्यकर्मके लिये कोई व्यवस्था थी। उनके जीवनकी वास्तविकता हमारी नजरोंके सामने थी।

उसे देखकर सतीश बोला—अत्यधिक गरीबी एवं अमीरी दोनों ही दु:खका कारण होते हैं। जीवनमें गरीबी अभावोंको जन्म देती है और अपराधीकरण एवं असामाजिक गतिविधियोंकी जन्मदात्री बनती है। इसी प्रकार अत्यधिक धन भी अमीरीका अहंकार पैदा करता है और दुर्व्यसनों एवं कुरीतियोंमें लिप्त कर देता है। यह मदिरा, व्यभिचार, जुआ-सट्टा आदि दुर्व्यसनोंमें लिप्त कराकर हमारा नैतिक पतन करता है।

हमारे यहाँ इसीलिये कहा जाता है कि—***'साईं इतना दीजिये जा में कुटुम समाय। मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥'*** हमें पर-उपकार एवं जनसेवामें ही जीवन जीना चाहिये, ताकि इस संसारसे निर्गमन होनेपर लोगोंके दिलोंमें हमारी छाप बनी रहे।

धनसे हमारी आवश्यकताएँ पूरी हों तथा उसका सदुपयोग हो, यह देखना हमारा नैतिक दायित्व है। धन न तो व्यर्थ नष्ट हो और न ही उसका दुरुपयोग हो। मैंने सतीशसे कहा कि यही सच्चा जीवन-दर्शन है। आओ, अब हम वापस चलें।

दीनबन्धु कृष्ण

(डॉ० पुष्पारानीजी गर्ग)

(१)

देवकी नै जायौ वासुदेव नाम पायौ
दूध जसुदा पिलायौ नंदलाल जे कहायौ है।
ग्वालन के संग चोरि चोरि नवनीत खायौ
लकुटी लै पाछे 'पुष्प' गैयन के धायौ है॥
माथे मोर पिच्छ कटि पीताम्बरी धारी
काँधे कामरियाकारी प्यारौ कृष्ण मन भायौ है।
बाँसुरी बजाय यानौ मोहि लीन्हे लोक तिहुँ
गोपिन के प्रेम बस रासहू रचायौ है॥

(२)

प्रेम की पुकार सुनि दौरि जात तत्छन ही
सभा बीच द्रौपदी के चीरकूँ बढ़ायौ है।
सस्त्र त्यागि आपु बन्यौ नायक महाभारत कौ
धर्म रच्छाहेतु जुद्ध मारग दिखायौ है॥
गीता कूँ सुनाय कर्मयोग की प्रतिष्ठा कीन्ही
अर्जुन के हेतु आपु रथहू चलायौ है।
दीन हीन दुर्बल की रच्छा 'पुष्प' कीन्ही सदा
योगेश्वर कृष्ण दीनबंधुहू कहायौ है॥

शास्त्रीय दिनचर्याका अनुकरण ही श्रेयस्कर

(डॉ० श्रीकमलाकान्तजी तिवारी)

मनुष्ययोनि कर्मयोनि है। कर्म करना उसका स्वभाव है। अतः वह बिना कर्म किये रह ही नहीं सकता। सुव्यवस्थित शुभकर्म नहीं करेगा तो अव्यवस्थित अशुभकर्म करेगा, आलस्य और प्रमादयुक्त निकम्मे कर्म करेगा और उसका अगला जन्म उसके कृत कर्मोंका फल होगा। चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रमणका जिम्मेदार यह मानव शरीर ही है।

एक नक्षत्र एवं एक ही क्षणमें विभिन्न परिस्थितियों एवं विभिन्न योनियोंमें जीवोंका जन्म उसके द्वारा मानव देहमें किये गये कर्मोंका ही परिणाम है। राजाके घरमें जन्म एवं भिखारीके घरमें जन्म तथा अन्य शूकर-कूकरादि योनियोंमें जन्म, ठीक एक ही समयपर पूर्वकृत कर्मोंका ही परिणाम है। इस घटनाका कारण मात्र मानव देहमें किये कर्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। **'स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः'** यह जगत् कर्मोंका ही फल है। अब यह प्रश्न है कि कर्म क्या है? इस विषयमें श्रीमद्भागवतका वचन है—**'कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः'** कर्म, अकर्म एवं त्याज्यकर्म क्या हैं, यह वेद-शास्त्र बताते हैं, लोक इसका निर्णय करनेमें समर्थ नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीतामें स्पष्ट निर्देश है—**'ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥'** (शास्त्र-विधिको जानकर ही कर्म करना चाहिये, शास्त्रानुसार कर्म करनेका निर्देश है) अभीतक हमने अपने जीवनका अधिकांश सम्भवतः शास्त्रविहित कर्मोंके विरुद्ध आचरणमें ही बिताया है। बीते जीवनके कर्मानुसार पुनः यह मानव देह प्राप्त होगी, ऐसा सम्भव नहीं लगता। परिणामतः पुनः तिरासी लक्ष निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे योनियोंमें भ्रमण करनेकी त्रासदी हमारे समक्ष है। इस मानव शरीरकी आयुका अधिकांश समय जाने-अनजाने बीत चुका है। बुद्धिमानी इसीमें है कि जीवनका शेष समय सावधानीके साथ बिताया जाय।

हमारी कई पीढ़ियाँ बीत गयीं—सन्ध्योपासना-गायत्री, तर्पण, शालग्राम (देव)-पूजन, गोग्रास, भगवान्का भोग दैनिक आचारसे बाहर हो गया है। **'अतर्पिताः पितरः रुधिरं पिबन्ति'** तर्पण, गयाश्राद्ध—बदरीश्राद्ध-विहीन घरोंमें पितरोंकी प्रेतबाधाके चलते हम सम्पन्नताके बावजूद दुखी जीवन जीनेको बाध्य हैं; क्योंकि हमने तपःपूत जीवन जीनेके स्थानपर अपनेको भोगोंका दास बना लिया है। स्वयं भगवान् कहते हैं—

सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः।
बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः॥

(श्रीमद्भा० २।९।२३)

अर्थात् मैं तपस्यासे ही इस संसारकी सृष्टि करता हूँ, तपस्यासे ही इसे धारण-पोषण करता हूँ और तपस्यासे ही इसे अपनेमें लीन कर लेता हूँ। तपस्या मेरी एक दुर्लंघ्य शक्ति है।

सोचिये, स्वयं भगवान् भी तपस्याका महत्त्व स्वयं अपने लिये बताते हैं। इसी प्रकार यज्ञका महत्त्व बताते हुए श्री भगवान् कहते हैं—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

(गीता ३।१०-११)

अर्थात् प्रजापति ब्रह्माने कल्पके आदिमें यज्ञसहित प्रजाओंको रचकर उनसे कहा कि तुमलोग इस यज्ञके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमलोगोंको इच्छित भोग प्रदान करनेवाला हो। तुमलोग इस यज्ञके द्वारा देवताओंको उन्नत करो और वे देवता तुमलोगोंको उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थभावसे एक-दूसरेको उन्नत करते हुए तुमलोग परम कल्याणको प्राप्त हो जाओगे।

सृष्टिके आदिमें ही भगवान्ने हम मनुष्योंको सकुशल जीवन बितानेके लिये देवताओं (भगवान्)-की

आराधनाकी अनिवार्यताका स्पष्ट निर्देश दिया है। हम सभी गृहस्थ जीवनमें बेपरवाह होकर जीवनको बितानेमें लगे हैं, वास्तविकता यह है कि हमने अपनी माताके उदरमें अपनी आयुके नौवें माहमें यह प्रतिज्ञा की थी—'इस मूत्र-पुरीषयुक्त स्थानसे आप शीघ्र मुझे बाहर करें, मैं यहाँसे निकलकर श्रीविष्णुभगवान्की निरन्तर आराधना करूँगा।'

कलियुगमें भगवान्की आराधना (तपस्या) क्या है?

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः॥

अर्थात् अपने वर्णाश्रमधर्मका सावधानीसे अच्छी तरह पालन करनेके अतिरिक्त श्रीविष्णुकी सन्तुष्टिके लिये और कोई अन्य विधान नहीं है—यही कलियुगकी तपस्या है।

यह बात अन्ततः अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि वर्णाश्रम (गृहस्थधर्म) हमारा क्या है? निश्चय ही विगत कई दशकोंसे हमने वर्णाश्रम-धर्मका परित्यागकर मनमानेरूपमें अपनी नित्यक्रिया बना ली है। हममेंसे अनेक लोग देर-सबेर पूजा-पाठ करते हैं, लेकिन अवैदिक विधिसे किया गया पूजा-पाठ वैदिक विधिसे निम्न कोटिका है। अतः अपनी नित्यक्रियामें किसी विज्ञका परामर्श लेकर वैदिक विधिका अनुसरण करना ही श्रेष्ठतर है। शास्त्र-विधिका परित्याग निन्दनीय है। देव-पूजन भी परम्परासे उन्हींका किया जाय, जो वेदशास्त्र-सम्मत देव हैं।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(गीता १६। २३)

अर्थात् जो पुरुष शास्त्रविधिको त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धिको प्राप्त होता है, न परमगतिको और न सुखको ही पाता है।

क्या करना चाहिये? क्या नहीं करना चाहिये? इसमें शास्त्र ही प्रमाण हैं, इसलिये शास्त्रविधिको जानकर कर्म करना चाहिये—मनमानी धर्मकी व्याख्या मिथ्याचार है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(गीता १६। २४)

कर्म, अकर्म एवं त्याज्य कर्म क्या हैं, यह वेद (शास्त्रका)-विषय है, लोक इसका निर्णय नहीं कर सकता। पुनश्च-धर्मशास्त्रोंमें किसी प्रकारका संशोधन वर्ज्य एवं निरी मूर्खता है—

कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः।

निश्चय ही हमारी बिगड़ी हुई दिनचर्याके चलते हम अपने संस्कारों और संस्कृतिको पूरी तरह तिलांजलि दे चुके हैं, परिणाममें हमारे घर और समाजमें भ्रष्टाचारका साम्राज्य स्थापित हो चुका है। यह कहनेमें संकोच नहीं है कि घर-बाहर हर जगह भयंकर रूपसे चारित्रिक पतन देखनेमें आता है। यदि इसमें सुधार न हुआ तो अगले एक-आध दशकमें ही हमारा घर एवं समाज दोनों पूरी तरह बरबाद हो जायगा। अब थोड़ा अपने जीवनकी नित्यक्रियापर विचार कीजिये। प्रातः शौचके बाद उसी अपवित्र वस्त्रमें बिना स्नान किये चाय-नाश्ता, फिर पूरे गाँवमें दोपहरतक द्वार-द्वार घूमना, गपशप करना, राजनीति-जैसे व्यर्थके विषयोंपर चर्चा, अखबार पढ़ना, ताश खेलना, परनिन्दादि—यह हमारी दिनचर्याका प्रधान अंग बन चुका है। दोपहर बाद स्नान, सीधे भोजन, विश्राम और पुनः ग्रामशूकरकी भाँति गाँवमें भ्रमण। विचार करें, क्या यही जीवन है?

हमारी वही दशा है, जो हरी-हरी घास खानेमें और बकरीके साथ सहवास करनेमें लगे हुए कुछ ही समय बाद कसाईकी छुरीके नीचे आनेवाले बकरेकी होती है। हमारे घरका प्रत्येक सदस्य हमारी इस दिनचर्यासे भलीभाँति परिचित ही नहीं, प्रायः अनुकरण भी कर रहा है। यह हमारी दिनचर्या ही हमारी अगली पीढ़ीका निर्माण कर रही है, जो हमसे भी भ्रष्ट निकलनेकी तैयारीमें है। यदि हम पुनर्जन्ममें विश्वास

रखते हैं तो क्या फिर दोबारा हमारे कर्मोंके परिणाममें मनुष्यका शरीर हमें प्राप्त होगा—उत्तर है निश्चित ही नहीं। भगवान् श्रीराम कहते हैं कि जैसे घटीयन्त्र चलता रहता है, वैसे ही जन्म-मरणका चक्र चलता रहता है—

सृष्टिकाले पुनः पूर्ववासनामानसैः सह।
जायते पुनरप्येवं घटीयन्त्रमिवावशः॥

(आध्यात्मरामायण किष्किन्धा० ३। २७)

अर्थात् सृष्टिकालमें (पुनर्जन्मके समय) यह जीव अपने पूर्व मन एवं वासनाके साथ ही जन्म लेता है। तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य जीवनमें सात्त्विकताकी प्रधानता रही है तो निश्चय ही—

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥

(गीता ६। ४१)

ऐसा योगभ्रष्ट पुरुष शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म लेता है तात्पर्य यह है कि अगले जन्ममें मनुष्य शरीर मिलने अथवा न मिलनेकी गारन्टी इस जन्ममें किये गये कर्मोंके अधीन है। हमारा अगला जन्म भी मनुष्य शरीरमें ही हो, यह हमारे हाथमें है। आजसे ही सावधान हो जाइये—अभीतक जो हुआ अथवा जो किया, उसे स्लेटपर चाकसे लिखा गया वाक्य मानकर मिटा दीजिये। परिवर्तन संकल्पकी दृढ़तापर निर्भर है।

मनुष्य जीवनका लक्ष्य भगवान् हैं, भोग नहीं। भोगकी अपेक्षा नहीं है, पर उसे भगवत्प्राप्तिके लिये सहायकके रूपमें स्वीकार करना है, हमने भगवान्की जगह भोगोंको ही लक्ष्य बना लिया है। भोग तो इस शरीरको प्राप्त करनेसे पहले अनेक भोगयोनियोंमें अनियन्त्रित होकर भोगा ही है, फिर इस साधन-धाम शरीरमें भी वही आचरण अपनाकर जीवन व्यतीत करना निश्चय ही आत्मघातीका आचरण है। अतः अपने सर्वविध कल्याणके लिये संक्षिप्त रूपमें अपनी दिनचर्या इस प्रकार बनायें—

प्रातः चार बजे ब्राह्ममुहूर्तमें अनिवार्य रूपसे उठना, शौचक्रियाके बाद गोशालादिका कार्य, सूर्योदयसे पहले स्नान-सन्ध्या-तर्पण और देवपूजन, वर्णाश्रमके अनुसार मस्तकपर अनिवार्यरूपमें गंगामृत्तिका या मलयागिरि चन्दन धारण करें। सूर्योदयके बाद स्वल्पाहार आदि पश्चात् कृषिकार्य आदि देखना, दोपहरमें भोजनके समय गोग्रास देकर भगवान्को भोग देना पश्चात् प्रसाद लेना (जो लोग कृषिकार्यसे प्रायः अवकाशमें रहते हैं, वे मध्याह्नमें भी सन्ध्या करें), थोड़ा विश्रामके बाद नित्यका स्वाध्याय-सत्संग नियमित करें। सायंकालकी सन्ध्या, भगवान्की आरती परिवारके साथ विशेषकर छोटे बच्चोंको साथ रखकर करें। सायंकाल भोग लगाकर प्रसाद लें।

यह अत्यन्त सामान्य दिनचर्या विधि बतायी गयी है, जो निश्चित रूपसे कल्याणकारी है।

[प्रेषक—पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्री]

सन्तवाणी

(१)

जगतमें भक्ति बड़ी सुख दानी॥
जो जन भक्ति करे केशव की सर्वोत्तम सोइ प्रानी।
आपा अर्पन करे कृष्ण को, प्रेम प्रीति मन मानी॥
सुमरे सुरुचि सनेह श्याम को, सहित कर्म मन बानी।
श्रीहरि छबि में छको रहत नित, सोइ सच्चा हरि ध्यानी॥
सब में देखे इष्ट आपनो, निज अनन्य पन जानी।
नैन नेह जल द्रवत रहत नित, सर्व अंग पुलकानी॥
हरि मिलने हित नित उमगे चित, सुध बुध सब बिसरानी।
विरह व्यथा में व्याकुल निशि दिन, ज्यों मछली बिन पानी॥
ऐसे भक्तन के वश भगवत, वेदन प्रगट बखानी।
सरसमाधुरी हरि हँस भेंटें, मेटें आवन जानी॥

(२)

भजन बिन नर मरघट को भूत।
श्यामा श्याम रटे रसना से तिन को जान सपूत॥
बिन हरि भजन करम सब अकरम, आठों गाँठ कपूत।
एक अनन्य भक्ति बिन कीये धृग करनी करतूत॥
निश दिन करत कपट छलबाजी, समझे नहीं अऊत।
सरसमाधुरी अंतकाल में मारेंगे यमदूत॥

[रसिक संत श्रीसरसमाधुरीजी]

आवरणचित्र-परिचय—

विघ्नराज श्रीगणेश

विघ्नराजावतारश्च शेषवाहन उच्यते।
ममतासुरहन्ता स विष्णुब्रह्मेति वाचकः॥

भगवान् श्रीगणेशका 'विघ्नराज' नामक अवतार विष्णुब्रह्मका वाचक है। वह शेषवाहनपर चलनेवाला तथा ममतासुरका संहारक है।

एक बारकी बात है। भगवती पार्वती अपनी सखियोंसे बात करती हुई हँस पड़ीं। उनके हास्यसे एक पुरुषका जन्म हुआ। वह देखते-ही-देखते पर्वताकार हो गया। पार्वतीजीने उसका नाम ममतासुर रखा। उन्होंने उससे कहा कि तुम जाकर गणेशका स्मरण करो। उनके स्मरणसे तुम्हें सब कुछ प्राप्त हो जायगा। माता पार्वतीने उसे गणेशजीका षडक्षर (**वक्रतुण्डाय हुम्**) मन्त्र प्रदान किया। ममतासुर माताके चरणोंमें प्रणामकर वनमें तप करने चला गया।

वहाँ उसकी शम्बरासुरसे भेंट हुई। उसने ममतासुरको समस्त आसुरी विद्याएँ सिखा दीं। उन विद्याओंके अभ्याससे ममतासुरको सारी आसुरी शक्तियाँ प्राप्त हो गयीं। इसके बाद शम्बरासुरने उसे विघ्नराजकी उपासनाकी प्रेरणा दी। ममतासुर वहीं बैठकर कठोर तप करने लगा। वह केवल वायुपर रहकर विघ्नराजका ध्यान तथा जप करता था। इस प्रकार उसे तप करते हुए दिव्य सहस्र वर्ष बीत गये। प्रसन्न होकर गणनाथ प्रकट हुए। ममतासुरने विघ्नराजके चरणोंमें प्रणामकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। इसके बाद उसने कहा—'प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे ब्रह्माण्डका राज्य प्रदान करें। युद्धमें मेरे सम्मुख कभी कोई विघ्न न हो। मैं भगवान् शिव आदिके लिये भी सदैव अजेय रहूँ।' भगवान् विघ्नराजने कहा—'दैत्यराज! तुमने दुःसाध्य वरकी याचना की है, फिर भी मैं उसे पूरा करूँगा।'

वर-प्राप्तकर ममतासुर पहले शम्बरके घर गया। वर-प्राप्तिका समाचार जानकर वह परम प्रसन्न हुआ। उसने अपनी रूपवती पुत्री मोहिनीका विवाह ममतासुरसे कर दिया। यह समाचार जब शुक्राचार्यको मिला। तो उन्होंने धूम-धामसे ममतासुरको दैत्योंका राजा बना दिया।

एक दिन ममतासुरने शुक्राचार्यसे अपनी विश्वविजयकी इच्छा व्यक्त की। शुक्राचार्यने कहा—'राजन्! तुम दिग्विजय तो करो, लेकिन विघ्नेश्वरका विरोध कभी मत करना। विघ्नराजकी कृपासे ही तुम्हें इस शक्ति और वैभवकी प्राप्ति हुई है।'

इसके बाद ममतासुरने अपने पराक्रमी सैनिकोंद्वारा पृथ्वी और पातालको जीत लिया। फिर स्वर्गपर आक्रमण कर दिया। इन्द्रसे उसका भीषण संग्राम हुआ। रक्तकी सरिता बह चली, परंतु बलवान् असुरोंके सामने देवगण न टिक सके। स्वर्ग ममतासुरके अधीन हो गया। युद्धक्षेत्रमें उसने भगवान् विष्णु और शिवको भी पराजित कर दिया। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर ममतासुर शासन करने लगा। देवताओंको बन्दीगृहमें डाल दिया गया। धर्माचरणका नाम भी लेनेवाला कोई न रहा।

सभी देवताओंने कष्टनिवारणके लिये विघ्नराजकी पूजा की। एक वर्षकी कठोर तपस्याके बाद भगवान् विघ्नराज प्रकट हुए। देवताओंने उनसे धर्मके उद्धार तथा ममतासुरके अत्याचारसे मुक्ति दिलानेकी प्रार्थना की। भगवान् विघ्नराजने नारदको ममतासुरके पास भेजा। नारदने उससे कहा कि तुम अधर्म और अत्याचारको समाप्तकर विघ्नराजकी शरण ग्रहण करो अन्यथा तुम्हारा सर्वनाश निश्चित है। शुक्राचार्यने भी उसे समझाया, पर उस अहंकारी असुरपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ममतासुरकी दुष्टतासे विघ्नराज क्रोधित हो गये। उन्होंने अपना कमल असुरसेनाके बीच छोड़ दिया। उसकी गन्धसे समस्त असुर मूर्च्छित एवं शक्तिहीन हो गये। ममतासुर काँपता हुआ विघ्नराजके चरणोंमें गिर पड़ा। उनकी स्तुति करके क्षमा माँगी। विघ्नराजने उसे क्षमाकर पाताल भेज दिया। देवगण मुक्त होकर प्रसन्न हुए। चारों तरफ भगवान् विघ्नराजकी जयकार होने लगी। **[मुद्गलपुराण]**

कहानी—

हरखूकी माँ

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

बात शायद ५०-५५ वर्ष पहलेकी है। उस समय राजस्थानके प्राय: प्रत्येक गाँवमें किसी वट या पीपलके वृक्षपर या किसी सूने कुएँकी सारण (ढलान)-में भूत-प्रेत या जिन्नका निवास माना जाता था। गाँवमें बहुत-से ऐसे व्यक्ति मिल जाते थे, जो कसम खाकर कहते कि अपनी आँखोंसे एक रात अमुक स्थानपर सफेद कपड़े पहने बड़े-बड़े पैरोंवाले, वृक्षकी-सी ऊँचाईके एक भूतको देखा था।

भूत-भूतनीके सिवाय कस्बे या गाँव में एक-दो डाकी या डाकिन भी होते थे। मुझे अपने गाँवकी एक घटना अब भी अच्छी तरह याद है। हरखूकी माँ वहाँ डाकिनके रूपमें प्रसिद्ध थी। उस समय वह प्रौढ़ावस्थामें थी। स्वास्थ्य भी साधारणतया ठीक था, परंतु लोग उससे डरते थे, इसलिए किसी घरमें उसे काम-काज मिलता नहीं था। कमानेवाला कोई था नहीं, भीख माँगकर किसी तरह अपना निर्वाह करती थी। जब मोहल्लेमें आती तो सारे घरोंमें पहलेसे ही उसके आनेकी खबर फैल जाती। स्त्रियाँ बच्चोंको छिपा लेतीं और घरके दरवाजेपर-से ही जल्दीसे अनाज या रोटी देकर उसे वापस कर देतीं। हम बच्चे सहमे हुएसे उसे जाते हुए पीछेसे देखनेका प्रयत्न करते।

उन दिनों गाँवोंमें डाक्टर-वैद्य तो थे नहीं। बच्चोंको 'डब्बा' या अन्य किसी प्रकारकी बीमारी होनेपर हरखूकी माँपर सन्देह जाता था। दो-तीन सयाने व्यक्ति जाकर उसका थूक लाकर बच्चोंपर छिड़कते थे। उनमेंसे बहुत-से तो अपने-आप ठीक हो जाते, मगर कुछ मर जाते। मरनेवालोंकी जिम्मेदारी हरखूकी माँ समझी जाती। हरखूकी माँने भी अपमानित जीवनसे एक प्रकारका समझौता-सा कर लिया था; क्योंकि जीवन-यापन करनेके लिये किसी-न-किसी प्रकारसे अन्न-वस्त्रकी व्यवस्था करना तो जरूरी था ही।

कई वर्षोंके बाद अपने गाँव गया था। दूसरी बातोंके साथ-साथ हरखूकी माँकी भी चर्चा आयी तो पता लगा कि वह बहुत दिनोंसे बीमार है, इसलिये भिक्षाके लिये नहीं आ पाती। उसे नजदीकसे जाननेकी जिज्ञासा तो बहुत वर्षोंसे थी ही और अब मेरे लिये उसका कोई भय नहीं रह गया था, इसलिये लोगोंके मना करनेपर भी एक मित्रके साथ उसके घर मिलनेके लिये गया।

वह गाँवसे बाहर एक झोंपड़ीमें रहती थी। वहाँ जाकर देखा कि एक टूटी-सी खाटपर वह लेटी हुई थी। दो-चार मिट्टीके और अल्युमिनियमके बरतन इधर-उधर बिखरे हुए पड़े थे। कई दिनोंसे शायद सफ़ाई नहीं की गयी थी, इसलिये कूड़ा-करकट भी फैला पड़ा था।

दो-तीन बार आवाज़ देनेपर वह उठी और फटी-फटी आँखोंसे हमें देखने लगी। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई उसे भी पूछनेके लिये आ सकता है। दुखी मनुष्यको जब सान्त्वना मिलती है तो वह द्रवित हो जाता है। हमें देखकर वह रोने लगी। कुछ कहना चाहती थी, परन्तु हिचकियाँ बँध गयीं; अत: कह न सकी। फ्लॉस्कमें चाय ले गये थे, एक बड़े कटोरेमें

पीनेको दी, सब पी गयी। शायद बहुत भूखी-प्यासी थी।

मैंने अपने मित्रको मोहल्लेमेंसे किसी एक मजदूरको लानेके लिये भेजा, परंतु कोई भी उसके पास आनेको तैयार नहीं हुआ। मेरे साथ कलकत्तेसे एक नौकर आया हुआ था। उसे साथ लेकर मैं शामको पुनः उसके यहाँ गया, साथमें गरम दूध, दलिया तथा साधारण ताकतकी औषधि ले गया था। जितनी राहत उसे पथ्य और दवासे नहीं मिली, शायद उससे ज्यादा इस बातसे मिली कि उस उपेक्षितके प्रति भी किसीकी सहानुभूति है।

दूसरे दिन समझा-बुझाकर एक वैद्यजीको ले गया और उसकी चिकित्सा शुरू की। उचित पथ्य और दवाकी समुचित व्यवस्थासे थोड़े दिनोंमें ही वह स्वस्थ हो गयी। फिर तो कई बार वहाँ गया, उसके प्रति एक आत्मीयता-सी हो गयी थी। मनमें एक कचोट-सी भी थी कि इस असहायके साथ अन्धविश्वासके वशीभूत होकर समाज और गाँवके लोगोंने बहुत बड़ा अन्याय किया है।

एक दिन मैंने कहा, ''हरखूकी माँ! मैं तुम्हारे बारेमें कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ। अगर बुरा न मानो तो मुझे अपने जीवनकी सारी बातें बताओ।'' थोड़ी-सी हिचकिचाहटके बाद जो इतिहास उसने बताया, वह इस प्रकार है—

''जब मैं १३ वर्षकी थी तब अमुक गाँवके ठाकुर साहबकी बाई-सा-के विवाहमें दायजेमें दे दी गयी थी। उनकी ससुरालमें आकर मेरा विवाह वहाँके एक दरोगाके लड़केके साथ कर दिया गया। हम दोनों पति-पत्नी रावलेकी चाकरीमें रहते थे। साधारण खाने-पहननेको मिल जाता था। पति कँवरसाहबका काम करता और मैं कँवरानीजी का।

कुछ वर्षों बाद हमें एक बच्चा हुआ, प्यारका नाम रखा गया हरखू! एक बार गाँवमें हैजा फैला। मेरा पति भी इससे अछूता न बचा। गाँवका एकमात्र वैद्य दूसरे बड़े लोगोंकी चिकित्सामें लगा हुआ था। बहुत आरजू-मिन्नत करनेपर भी वह मेरे पतिको देखने नहीं आया और दवा-दारूके अभावमें वह मर गया। रावलेमें खबर भेजी गयी, परंतु वहाँसे कोई भी श्मशानतक साथ जानेके लिये नहीं आया; क्योंकि हैजेके रोगसे मृत व्यक्तिकी छूत लग जानेका डर जो था। मैंने दो-चार पड़ोसियोंकी सहायतासे किसी प्रकार उसका दाह-संस्कार किया! घर आनेपर बच्चेको भी दस्त और उलटी होते हुए पाया। दवाके नामपर भगवान्‌का नाम लेकर प्याजका रस देनेकी तैयारी कर ही रही थी कि ठाकुर साहबके यहाँसे बुलावा आ गया। बहुत रोने-गिड़गिड़ाने पर भी छुटकारा नही मिला। कँवरानीजीकी चोटी-कंघी करके जब मैं भागती हुई घर लौटी तो मेरा हरखू सारे दुःखोंको भूलकर सदाके लिये सोया हुआ मिला। इसके बाद मैं पागल-सी रहने लगी, रात-दिन हरखूको पुकारती रहती। थोड़े दिनोंके बाद ही फिरसे मुझे रावलेके कामपर जाना पड़ा। हम दरोगे एक प्रकारसे ठाकुरोंके जर-खरीद गुलामकी तरह होते थे।

संयोगसे उन्हीं दिनों कँवरानीजीके दोनों पुत्र मर गये। मुझे कुलक्षणी समझकर वहाँसे निकाल दिया गया और फिर मैं इस कस्बेमें आकर मेहनत-मजदूरी करके निर्वाह करने लगी। मुझे बच्चोंसे कुछ इस प्रकारका मोह हो गया था कि बिना मेहनतानेके ही मोहल्लेके बच्चोंका काम करती रहती, उन सबमें मुझे अपने हरखूकी झलक मिलती थी।

शायद पूर्व-जन्ममें मैंने बड़े पाप किये थे। एक दिन एक बच्चेको मैं उसकी माँसे लाकर खेला रही थी कि थोड़ी देरमें ही कमेड़ा आकर उसका देहान्त हो गया। उसके बाद तो मैं गाँवमें डाकिनके नामसे बदनाम हो गयी। औरतें मुझे देखते ही बच्चोंको छिपा लेती थीं। गाँवके बड़े बच्चे पीछेसे पत्थर मारकर चिल्लाते— हरखूकी माँ डाकिन है। पहले तो लोगोंके घरसे कुछ मिल जाता था, अब वह भी बन्द हो गया। पचास वर्ष हो गये, तबसे भीख माँगकर ही किसी प्रकार अपना यह

पापी पेट पालती हूँ, परंतु आज भी जब मैं किसी छोटे बच्चेको देखती हूँ तो मुझे अपना हरखू याद आ जाता है।''

उसने खाटके नीचेसे टीनका एक गोल डिब्बा निकाला और उसमेंसे गोट लगे हुए टोपी-कुरते निकालकर दिखाने लगी। वे सब उसके हरखूके थे। दो छोटे-छोटे चाँदीके कड़े और एक हनुमान्‌जीकी मूर्ति भी थी। यह सब दिखाते-दिखाते वह अपने-आपको और ज्यादा न रोक सकी। उसके धीरजका बाँध टूट गया और आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी। बड़े जोरसे रोते हुए कहने लगी—''परमात्मा जानता है, मैंने गाँवमें किसीका कोई नुकसान नहीं किया। फिर भी पिछले ५० वर्षोंसे इन लोगोंने मुझे बदनाम कर रखा है और मेरा इतना बड़ा अपमान करते आ रहे हैं, अब और सहा नहीं जाता। दुनियामें इतने लोग मरते हैं, पर मुझ अभागिनको मौत भी नहीं आती।''

बहुत भारी मनसे मैं उस दिन उसे सान्त्वना देकर घर लौटा। दो-तीन दिन बाद ही आवश्यक कार्यसे मुझे अपने गाँवसे रवाना होना पड़ा। कलकत्ता आकर अनेक प्रकारके झंझटोंमें फँसकर हरखूकी माँकी बात भूल गया। तीन-चार वर्ष बाद मैं पुन: गाँव गया तब पता चला कि हरखूकी माँकी गाँवके लोगोंने दिन-दहाड़े हत्या कर दी थी।

घटना इस प्रकार बतायी गयी कि एक दिन गाँवके एक प्रतिष्ठित सेठका बच्चा बीमार हो गया। संयोगसे इसके पहले दिन हरखूकी माँ उनके यहाँ रोटी लेने गयी थी, अतः उसपर उनका शक़ जाना स्वाभाविक था। चार-पाँच व्यक्ति उसके यहाँ गए और एक कटोरीमें थूकनेके लिये कहा। उस दिन उसे भी कुछ इस प्रकारकी जिद्द हो गयी कि वह थूकनेको तैयार ही नहीं हुई।

निरीह बुढ़ियाका थूक निकालनेके लिये उनमें से दो-तीन व्यक्तियोंने जोरसे उसका गला दबाया। बीमार और कमजोर वृद्धा भला कहाँ इतना जोर-जुल्म सह पाती? झाग और थूकके साथ-साथ उसके प्राण भी निकल गये।

घर आकर देखा गया कि वह बच्चा भला-चंगा खेल रहा है, परंतु गाँवके 'समझदार' लोगोंकी धारणा थी कि अगर उससे जबरन थूक नहीं लिया जाता तो शायद बच्चेकी जान नहीं बचती। डाक्टर और पुलिसको किसी प्रकार राजी करके मामला दबा दिया गया। उस गरीब औरतके लिये किसको पड़ी थी कि सेठजीसे बैर मोल लेता?

थोड़े दिनों बाद सेठजीके यहाँ बच्चेके स्वास्थ्य-लाभकी खुशीमें हनुमान्‌जीके प्रसादका भोज हुआ। गाँवके पचासों व्यक्ति दाल-चूरमा खाते हुए हरखूकी माँकी मौतके बारेमें इस प्रकारसे बातें कर रहे थे, जैसे वह एक साधारण-सी घटना थी। मैं भी निमंत्रणमें तो गया था, परंतु किसी प्रकार भी भोजमें सम्मिलित न हो सका। मुझे वहाँकी हवामें उस वृद्धाके अन्त समय की चीख-पुकार सुनायी पड़ रही थी।

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टाँटिया]

सच्ची भक्ति

आन्ध्रके पोतन्ना नामक सन्त कवि कृषक थे। खेतीद्वारा जीवन-निर्वाह करते थे। भगवान्‌की भक्तिमें सदैव लीन रहते थे। संस्कृतका अधिक ज्ञान न था, किंतु अध्ययन करते-करते उन्हें कुछ ज्ञान अवश्य हो गया था, इसीलिये वे 'भागवत' का तेलुगूमें अनुवाद कर लाते थे। उन्होंने जब यह ग्रन्थ लिखा, तो मित्रोंने सलाह दी कि यदि ग्रन्थ राजाको समर्पित किया जायगा, तो खूब प्रचार होगा और साथ ही धन भी अधिक मात्रामें मिलेगा। किंतु भक्त कविने बात अनसुनीकर जवाब दिया, 'मैं इसपर सोचूँगा।' और जब उन मित्रोंने समर्पण-पत्रिका देखी, तो उन्होंने यह लिखा पाया—'यह भगवान्‌की कृति भगवान्‌को ही अर्पित करता हूँ।'

—श्रीशरद्‌चन्द्रजी पेंढारकर

ऊर्जाका अक्षय स्त्रोत—गोबर गैस

(सर्वोदय विचार परिषद्)

विज्ञानकी प्रगति और नित नये आविष्कारोंके साथ जमाना बदलता जा रहा है। किसी जमानेमें ट्रंककाल बुक करके बात की जाती थी, भारी-भारी घुमानेवाले फोन थे। अब हलके-हलके मोबाइल आ गये हैं, इण्टरनेटके जरिये चेहरा देखकर बात कर सकते हैं। किसी जमानेमें भारी-भारी कैमरे थे, फिर आये रीलवाले कैमरे। अब डिजिटल कैमरा आ गया तो पुराने कैमरे अलमारीमें बन्द पड़े रहते हैं। किसी जमानेमें सभी रेलगाड़ियाँ कोयलेके इंजनसे चलती थीं, उसकी जगह ली डीजल इंजनने एवं डीजल इंजन भी अब शंटिंगके काम आता है—बिजलीका इंजन ही ज्यादातर रेलगाड़ियाँ चलाता है, किंतु बिजलीका इंजन भी आगामी कुछ सालोंमें म्यूजियममें देखनेको मिलेगा। उसका स्थान लेने वाला है गोबर गैससे चलनेवाला इंजन। स्वीडनमें गोबर गैससे चलनेवाला इंजन ३०० किलोमीटरकी स्पीडसे रेलगाड़ीको चलाता है, बैंकाकमें प्राकृतिक गैससे टैम्पू चलते हैं, दिल्ली आदि कुछ शहरोंमें बसें एवं टैम्पू कम्प्रेस्ड नेचुरल गैस (CNG)-से चल रहे हैं। कानपुर एवं जयपुर गोशालाकी मारुति कार/वैन भी गोबर गैससे चल रही है।

आज अमेरिका-जैसे समृद्ध देशके राष्ट्रपतिको भी मानना पड़ रहा है कि डीजल, पेट्रोल, कोयला आदि सब खत्म होनेवाला है, ऊर्जाके अक्षय स्त्रोतकी खोज होनी है और गायका गोबर इसका एक सशक्त विकल्प हो सकता है। कैलिफोर्निया, आस्ट्रेलिया आदि अनेक स्थानोंमें गोबरसे बिजली बन भी रही है। महान् वैज्ञानिक एवं दिल्ली विश्वविद्यालयके अवकाशप्राप्त प्रोफेसर मदन मोहन बजाजका मानना है कि बहुत शीघ्र ही वह जमाना आयेगा, जब सारे हवाई जहाज भी इसी गोबर गैससे चलेंगे। भविष्यमें अधिकांश परिवहन एवं बिजली-उत्पादन गोबर गैससे होनेवाला है—ऐसा डॉ० बजाजका मानना है। इस गैसके प्रयोगसे सबसे कम प्रदूषण होता है। इसीलिये इसे 'ग्रीन फियुल' अर्थात् 'हरा ईंधन' भी कहते हैं। कहावत है—'गाय घास-फूस खाकर अमृत-जैसा दूध देती है, जो मनुष्यके शिशुकालसे जीवनका प्रमुख आधार है, किंतु अब कहावत बदलनेवाली है कि 'गाय घास-फूस खाकर गोबर-जैसा अनमोल खजाना देती है—जिससे सारी दुनिया चलती है और सारी दुनिया रोशन होती है।' इस प्रकार गायके आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, औषधीय एवं कृषि-सम्बन्धी महत्त्वसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो जायगा उसका आर्थिक पक्ष।

दुर्भाग्यकी बात है कि स्वतन्त्रताके बादके गत ६०-६२ सालोंमें हमलोगोंने ९० प्रतिशत गोवंशका नाश कर दिया है। गोवंशका नाश सोनेका अण्डा देनेवाली मुर्गीकी हत्याके समान मूर्खतापूर्ण कदम है, जो भारत सरकार नये-नये कत्लखाने खोलकर एवं मांस-निर्यातको बढ़ावा देकर उठा रही है, उससे गोवंशकी अनेक प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं और अनेक विलुप्तिके कगारपर हैं। जैसे शेर-हिरणके संरक्षणपर सरकार करोड़ों रुपये खर्च करती है, वैसे ही गोवंशके संरक्षणपर भी उसे खर्च करना चाहिये; क्योंकि गाय सबसे उपयोगी है। यह हमारे अस्तित्वके लिये आवश्यक है और भविष्यकी ऊर्जाका अक्षय स्त्रोत है।

गोबरमें भगवती लक्ष्मीका निवास

लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं पवित्रा सर्वमङ्गला। गोमयालेपनं तस्मात् कर्तव्यं पाण्डुनन्दन॥

(स्कन्द० अ० रे० ८३। १०८)

गोबरमें परमपवित्र सर्वमंगलमयी श्रीलक्ष्मीजी नित्य निवास करती हैं। इसलिये गोबरसे लेपन करना चाहिये।

संत उद्‌बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधक महानुभाव! सावधानीमें सर्वतोमुखी विकास तथा जीवन है, इस महामन्त्रको अपनाना प्रत्येक सजग मानवके लिये अनिवार्य है। किसी भी व्रतको पूरा करनेके लिये तप, प्रायश्चित्त तथा प्रार्थना अनिवार्य है। आप महानुभाव बड़े ही भाग्यशाली हैं, जिन्होंने आजीवन मानवकी हितकारी सेवा स्वीकार की है। सेवापरायण मानवका जीवन ही प्राकृतिक तथा दैवी विधानके अनुरूप हो जाता है; कारण कि विधान और जीवनमें एकता है। वह विधान नहीं है, जिसके अपना लेनेपर अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप जीवनकी प्राप्ति न हो। स्वाधीनता प्राप्त करनेकी स्वाधीनता मानवको जन्मजात प्राप्त है। मानव अपनी ही भूलसे पराधीन होकर सभीके लिये अनुपयोगी हो गया है। शान्तिपूर्वक अपनी ओर देखनेसे अपनी भूलका अनुभव हो सकता है और भूलरहित न होनेकी वेदना मानवको सदाके लिये भूलरहित कर देती है, यह वैधानिक तथ्य है। वर्तमानकी वेदना ही भविष्यकी उपलब्धि होती है। लक्ष्यसे निराश न होनेपर स्वत: वेदनाकी उत्पत्ति होती है। वेदना वह तत्त्व है, जो व्यथितको सदाके लिये व्यथारहित कर देती है। आप सजग मानव हैं। आपको अपने व्रतको पूरा करनेके लिये बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयोंको सहर्ष सहन करना चाहिये। वह तभी सम्भव होगा, जब आप मानव-जीवनके महत्त्वको अपनायेंगे। मानव-जीवनमें निराश होने तथा हार स्वीकार करनेके लिये कोई स्थान ही नहीं है। की हुई भूल न दोहराना ही वास्तविक प्रायश्चित्त है और लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये नित-नव उत्साह तथा परम व्याकुलता ही प्रार्थना है। केवल माँगको जगाना है, वह अपनी पूर्तिमें आप समर्थ है।

अपनी सेवा और मानवकी सेवा एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। ज्यों-ज्यों मानव अपनेको अपने लिये उपयोगी बनाता जाता है, त्यों-त्यों वह मानवमात्रके लिये उपयोगी होता जाता है; क्योंकि अपने लिये उपयोगी हुए बिना कोई मानव-सेवा कर ही नहीं सकता और न वह जगत् तथा जगत्पतिके काम आ सकता है। सर्वोत्कृष्ट सेवा यही है कि अचाह होकर प्राप्त बलका सदुपयोग किया जाय। मानव-जीवनमें बलके दुरुपयोगके लिये कोई स्थान ही नहीं है। पदलोलुपता, अधिकार-लालसाकी जीवनमें गन्ध भी न रह जाय, जीवन उदारता तथा प्रेमसे भरपूर हो जाय; यह माँग सतत अपने समक्ष रखनी है।

आजीवन कार्यकर्ताको त्यागको अपनाकर उसकी फलासक्तिसे और प्रेमको अपनाकर प्रेमी होनेके भाससे रहित हो जाना है।

यह तभी सम्भव होगा, जब यह अनुभव किया जाय कि बल अपने लिये नहीं है, अपितु 'पर' के लिये है। ज्ञान अपने लिये है और प्रेम प्रभुके लिये है। इस सत्यसे जीवनको अभिन्न करना है। भूतकालकी भूलसे भयभीत होकर निराश न हो जायँ, अपितु वर्तमान निर्दोषताके आधारपर अभय हो जायँ। जो भयरहित हो जाता है, उससे किसीको भय नहीं होता। वह सभीका अपना हो जाता है और सभी उसके अपने हो जाते हैं। अर्थात् मानव-सेवा करनेवालेका विश्व और विश्वनाथसे अविभाज्य सम्बन्ध है। सेवा, त्याग, प्रेम उसका सहज स्वभाव है, जो सभीको अभीष्ट है।

यह भलीभाँति अनुभव करो कि अल्प सामर्थ्यसे विकासमें कोई बाधा नहीं होती, अपितु पवित्र भावसे प्राप्त सामर्थ्यके सदुपयोगसे सभीका सर्वतोमुखी विकास होता है। यह कैसा अनुपम अलौकिक विधान है! अब आप महानुभावोंको यह मान ही लेना चाहिये कि अपने लिये उपयोगी होकर सभीके लिये उपयोगी होनेका दायित्व पूरा करना है। जो अपनी आप सहायता करता है, उसके लिये जगत् और जगत्पति दोनों ही अनुकूल हो जाते हैं। इस वास्तविकतामें आस्था करो और लक्ष्यपर दृढ़ रहो—सफलता अवश्यम्भावी है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

रागात्मिका और रागानुगा भक्तिका भेद

सम्मान्य महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि भक्ति सर्वश्रेष्ठ है—यह जब निश्चय और अनुभव हो जाता है, तब किसी 'रागानुगा भक्त' की कृपासे 'मधुर भक्तिरस' की आसक्ति उत्पन्न होती है, तभी रागानुगा भक्तिमें चित्तकी गति होती है। श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरमें व्रजवासियोंकी जो नित्य भक्ति है, वह वैधी भक्ति नहीं है—वह 'रागात्मिका' है। रागके विभिन्न भेद हैं—किसीमें सखा-भावका राग है, किसीमें वात्सल्य भावका और किसीमें मधुर भावका। इसीसे इन लोगोंकी भक्ति 'रागात्मिका' कहलाती है। इस रागात्मिका भक्तिके अनुगत इसीके अनुसार विभिन्न रागोंके रूपमें जो भक्ति होती है, उसे 'रागानुगा' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि इन महाभाग व्रजवासियोंके अनुगत होकर भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दनकी सेवा प्राप्त करनेके लिये जो श्रवण-कीर्तनादि साधन किये जाते हैं, उन साधनोंको 'रागानुगा भक्ति' कहते हैं। व्रजवासियोंकी रागात्मिका भक्ति नित्य है और यह रागानुगा साधनारूपा है। ये दोनों ही आसक्तिरूप भक्ति हैं। शेष भगवत्कृपा।

(२)

पूँजीवाद पश्चिमकी देन है

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि हमारे यहाँ मानवमात्रके लिये चार पुरुषार्थोंका विधान है। वे पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। पूँजीवाद, मजदूरवाद आदि वर्ग हैं ही नहीं। सभी मानव आवश्यक अर्थ उपार्जन करें और सभी सेवा करें। सभी संसारमें जीनेके लिये धर्मसम्मत कामका यथावश्यक सेवन करें और सभीका लक्ष्य मोक्ष हो। फिर 'अर्थ और काम' के लिये जीवनका केवल चौथा हिस्सा ही रहे—तीन हिस्से त्यागके रहें। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम हैं। इनमें एक गृहस्थके सिवा तीनों त्यागके हैं। आजका युग और आजकी पाश्चात्य संस्कृतिका ध्येय है—केवल भोगार्जन तथा भोग-सुख। इसमें त्यागको स्थान नहीं है। यहाँ त्याग भी कहीं होता है तो वह भोग-प्राप्तिके लिये। हमारे यहाँ गृहस्थाश्रममें भोग था, पर वह भी था त्यागमूलक तथा त्यागके लिये ही। **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'**—हमारी वेदवाणी है। आजका समाजवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद, श्रमवाद—सभी इस भोगको आदर्श माननेवाली संस्कृतिकी ही अपवित्र देन हैं। इसीलिये समाजवाद तथा साम्यवादके नामपर पूँजीवादका संगठन होता है और परस्पर वर्ग-संघर्ष तथा कलह-विनाश चलते रहते हैं। भारत भी आज इसी व्यामोहसे ग्रस्त है। जबतक यह व्यामोह नहीं छूटेगा, तबतक विरोध, हिंसा, क्लेश और फलतः दुःख बढ़ेगा ही। असली साम्यवाद है—सबमें एक आत्माको या एक भगवान्को देखकर सबका यथायोग्य सम्मान, हित करना तथा सबको सुख पहुँचाना।

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४१)

शेष भगवत्कृपा।

(३)

चराचर प्राणियोंमें भगवान्को देखकर सबका हित करना चाहिये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। मनुष्यको अपने विशुद्ध आचार-विचार तथा अपने धर्मके प्रति अवश्य ही परम श्रद्धा रखनी चाहिये, परंतु दूसरे किसीसे कभी घृणा नहीं करनी चाहिये। द्वेष तो किसीसे भी कभी न करे। सत्य तो यह है कि चराचर समस्त जगत् भगवान्की ही अभिव्यक्ति है। इससे सभी हमारे लिये पूज्य, सेव्य और आदरणीय हैं।

जीव चराचरमें बसे एकमात्र भगवान्।
उन्हें देख नित कीजिये सबका हित-सम्मान॥
घृणा-द्वेषका त्याग कर सबसे करिये प्रीति।
प्रभु-प्रसन्नताकी सुखद यह शुचि सुन्दर रीति॥
वर्ण-जाति-कुल देशके विविध मतोंके भेद।
प्रभु-लीला सब, हैं रमे सबमें राम अभेद॥
रहे भेद बर्तावमें नाम-रूप-अनुसार।
बना रहे पर नित्य सम सबमें आत्मविचार॥
मस्तकसे पदतक सभी एक देहके अंग।
पर उनके व्यवहारमें रहता भेद-प्रसंग॥
सबका हित-सुख चाहते, सबमें हित सम प्रेम।
करते सबका ही वहन प्रमुदित योग-क्षेम॥
इसी तरह सबमें सदा देखें प्रभुका रूप।
हितकर तन-मन-वचनसे सेवा करें अनूप॥

(पद-रत्नाकर १३६८)

उपर्युक्त दोहोंके अनुसार ब्राह्मण-चाण्डाल, अपना-पराया, हिन्दू-मुसलमान, देशी-विदेशी, मनुष्य-पशु—सभीके साथ निर्दोष तथा यथासाध्य प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हुए सदा सबका यथोचित सम्मान हित-सुख-सम्पादन करना चाहिये। भगवान्के इन वचनोंको याद रखे, जो उन्होंने भक्तके लक्षण बतलाते हुए प्रारम्भमें कहे हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(गीता १२। १३)

सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंमें द्वेषभावसे रहित हो, सबके साथ मित्रताका व्यवहार करे, मनमें दया भरी हो, कहीं ममता न हो, किसी बातका अहंकार न हो, अपने दुःख-सुखमें समभाव रहे तथा अपना बुरा करनेवालोंको भी अभयदान देकर उसका भला करे। शेष भगवत्कृपा।

(४)

पापका आदेश किसीका न मानें

प्रिय बहन! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपका भगवान्पर पूर्ण विश्वास है तथा सदा उनकी कृपाकांक्षिणी बने रहना चाहती हैं, सो बहुत अच्छी बात है। आपने भक्ति तथा भगवान्के नामपर छल-कपट तथा दुष्कर्म करनेवाले लोगोंके प्रति घृणा होनेकी बात लिखी तो ऐसे लोगोंसे प्रेम तो कैसे होगा? पर वास्तवमें ऐसे लोग (पुरुष हों या स्त्री) बेचारे पथभ्रष्ट होकर अपने ही हाथों अपना भीषण दुःखमय भविष्य बना रहे हैं, अतएव दयाके पात्र हैं। ऐसे लोगोंके प्रति उपेक्षा करनी चाहिये तथा हो सके तो इनको सद्बुद्धि प्राप्त हो और ये पाप-पथका परित्यागकर सत्यपथपर आ जायँ—इसके लिये दयामय भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। घृणा करनी चाहिये पापोंसे, पापीसे नहीं। आपने पूछा कि 'सासके यदि कर्म ठीक न हों और वह पुत्रवधूको भी उसी मार्गपर ले जाना चाहती हो तो पुत्रवधू क्या करे?' सो, ऐसी सासकी भी उसकी विपत्ति-अवस्थामें सेवा करनी ही चाहिये, परंतु उसकी अनुचित बातोंका या अवाञ्छनीय कर्मोंका न तो कभी समर्थन ही करना चाहिये और न उसके बताये मार्गपर चलना ही चाहिये।

कर्म तीन प्रकारसे सम्पन्न होते हैं—कृत (स्वयं करे), कारित (दूसरोंसे कहकर करवाये) और अनुमोदित (कोई करता हो तो उसका समर्थन करे)। अतः यदि कोई पाप करनेके लिये किसीको भी प्रेरणा करता या आदेश देता है तो वह भी पाप करता है और पापका बुरा फल उसे अवश्य भोगना पड़ेगा।

बड़ोंकी आज्ञा अधिक-से-अधिक यहाँतक मानी जा सकती है कि जिससे उनको—आज्ञा देनेवालोंको बुरा फल न भोगना पड़े, आज्ञा माननेवालोंकी कुछ हानि हो तो कोई बात नहीं। पर जिस बातमें उनका परिणाममें बुरा होता हो, ऐसी सम्मति या आज्ञा नहीं माननी चाहिये। यह अपराध नहीं है। पापका आदेश किसीका भी नहीं मानना चाहिये। श्रीतुलसीदासजी तो कहते हैं—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥

उन 'साधु-वेषधारियों' या 'भक्त-नामधारियों' से सदा सावधान रहना चाहिये, जो अनाचार करते हों। वे न तो साधु हैं, न भक्त ही। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, आश्विन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ६।२६ बजेतक द्वितीया रात्रिशेष ४।३ बजेतक	मंगल	रेवती सायं ६।१६ बजेतक	२९सितम्बर	**मेषराशि** सायं ६। १६ बजेसे, **द्वितीयाश्राद्ध, पंचक** समाप्त सायं ६। १६ बजे।
तृतीया रात्रिमें १।४९ बजेतक	बुध	अश्विनी ,, ४।४३ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें २।५७ बजेसे रात्रिमें १।४९ बजेतक, **तृतीयाश्राद्ध, मूल** सायं ४।४३ बजेतक।
चतुर्थी ,, ११।४८ बजेतक	गुरु	भरणी दिनमें ३।२१ बजेतक	१ अक्टूबर	**वृषराशि** रात्रिमें ९।४ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।३२ बजे, **चतुर्थीश्राद्ध।**
पंचमी ,, १०।४ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, २।१४ बजेतक	२ ,,	**श्रीचन्द्रषष्ठी, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।२४ बजे, **पंचमीश्राद्ध, महात्मा गांधी** जयन्ती।
षष्ठी ,, ८।४२ बजेतक	शनि	रोहिणी ,, १।२९ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।४२ बजेसे, **षष्ठीश्राद्ध, मिथुनराशि** रात्रिमें १।१७ बजेसे।
सप्तमी ,, ७।४४ बजेतक	रवि	मृगशिरा ,, १।६ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।१४ बजेतक, **सप्तमीश्राद्ध, भानुसप्तमी।**
अष्टमी ,, ७।१५ बजेतक	सोम	आर्द्रा ,, १।९ बजेतक	५ ,,	**जीवत्पुत्रिकाव्रत, अष्टमीश्राद्ध।**
नवमी ,, ७।१७ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, १।४२ बजेतक	६ ,,	**कर्कराशि** दिनमें ७।३४ बजेसे, **मातृनवमी, नवमीश्राद्ध, अन्वष्टकाश्राद्ध।**
दशमी ,, ७।५१ बजेतक	बुध	पुष्य ,, २।४६ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।३४ बजेसे रात्रिमें ७।५१ बजेतक, **दशमीश्राद्ध, मूल** दिनमें २।४६ बजेसे।
एकादशी ,, ८।५४ बजेतक	गुरु	आश्लेषा सायं ४।१९ बजेतक	८ ,,	**सिंहराशि** दिनमें ४।१९ बजेसे, **इन्दिरा एकादशीव्रत** (सबका), **एकादशीश्राद्ध।**
द्वादशी ,, १०।२३ बजेतक	शुक्र	मघा ,, ६।१७ बजेतक	९ ,,	**द्वादशीश्राद्ध, मूल** सायं ६।१७ बजेतक।
त्रयोदशी ,, १२।१४ बजेतक	शनि	पू० फा० रात्रिमें ८।३७ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।१४ बजेसे, **कन्याराशि** रात्रिमें ३।१५ बजेसे, **त्रयोदशीश्राद्ध, शनिप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, २।१८ बजेतक	रवि	उ० फा० ,, ११।११ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें १।१७ बजेतक, **चतुर्दशीश्राद्ध, चित्राका सूर्य** रात्रिमें ९।३ बजे।
अमावस्या ,, ४।२५ बजेतक	सोम	हस्त ,, १।४८ बजेतक	१२ ,,	**सोमवती अमावस्या, अमावस्या श्राद्ध, पितृविसर्जन, महालया समाप्त।**

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, आश्विन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा अहोरात्र	मंगल	चित्रा रात्रिमें ४।१९ बजेतक	१३अक्टूबर	**शारदीय नवरात्रारम्भ, तुलाराशि** दिनमें ३।४ बजेसे, **मातामह श्राद्ध।**
प्रतिपदा प्रातः ६।२५ बजेतक	बुध	स्वाती अहोरात्र	१४ ,,	**चन्द्रदर्शन।**
द्वितीया दिनमें ८।८ बजेतक	गुरु	स्वाती प्रातः ६।३६ बजेतक	१५ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें २।१ बजेसे।
तृतीया ,, ९।२६ बजेतक	शुक्र	विशाखा दिनमें ८।२९ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९।५० बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी ,, १०।१९ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ९।५७ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।१९ बजेतक, **उपाङ्गललिताव्रत, मूल** दिनमें ९।५७ बजेसे।
पंचमी ,, १०।४० बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, १०।५४ बजेतक	१८ ,,	**धनुराशि** दिनमें १०।५४ बजेसे, **तुला-संक्रान्ति** दिनमें २।१४ बजे।
षष्ठी ,, १०।२९ बजेतक	सोम	मूल ,, ११।२१ बजेतक	१९ ,,	**मूल** दिनमें ११।२१ बजेतक।
सप्तमी ,, ९।४८ बजेतक	मंगल	पू० षा० ,, ११।१७ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें ९।४८ बजेसे रात्रिमें ९।१४ बजेतक, **मकरराशि** सायं ५।१० बजेसे।
अष्टमी ,, ८।४१ बजेतक	बुध	उ० षा० ,, १०।४८ बजेतक	२१ ,,	**श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, श्रीदुर्गानवमीव्रत।**
नवमी प्रातः ७।११ बजेतक दशमी रात्रिशेष ५।२० बजेतक	गुरु	श्रवण ,, १०।० बजेतक	२२ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ९।२५ बजेसे, **विजयादशमी, पंचकारम्भ** रात्रिमें ९।२५ बजे।
एकादशी रात्रिमें ३।१५ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ,, ८।४९ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा सायं** ४।१८ बजेसे रात्रिमें ३।१५ बजेतक, **पापांकुशा एकादशीव्रत** (स्मार्त)।
द्वादशी ,, १२।५९ बजेतक	शनि	शतभिषा प्रातः ७।२४ बजेतक पू० षा० रात्रिशेष ५।४८ बजेतक	२४ ,,	**मीनराशि** रात्रिमें १२।१२ बजेसे, **एकादशीव्रत** (वैष्णव), **सायन वृश्चिक** के सूर्य दिनमें १।१३ बजे।
त्रयोदशी ,, १०।३७ बजेतक	रवि	उ० भा० रात्रिमें ४।९ बजेतक	२५ ,,	**प्रदोषव्रत, स्वातीका सूर्य** प्रातः ६।४४ बजे, **मूल** रात्रिशेष ४।९ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ८।१३ बजेतक	सोम	रेवती ,, २।२९ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।१३ बजेसे, **मेषराशि** रात्रिमें २।२९ बजेसे, **शरत्पूर्णिमा,** पंचक समाप्त रात्रिमें २।२९ बजे।
पूर्णिमा सायं ५।५३ बजेतक	मंगल	अश्विनी ,, १२।५३ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।३ बजेतक, **पूर्णिमा, श्रीवाल्मीकि-जयन्ती, मूल** रात्रिमें १२।५३ बजेतक।

कृपानुभूति

नीलमणि गोपालकी कृपा

मेरा बचपन लखनऊमें बीता था। मैंने बचपनमें ही श्रीकृष्णभगवान्‌का एक चित्र खरीदा था, उसे मैंने अपने पढ़नेकी मेजके ऊपर दीवारपर टाँग रखा था। मुझे उनपर कोई विश्वास था, ऐसा मुझे याद नहीं; पर मुझे उनसे कुछ आत्मीयताका-सा भाव रहता था। उस चित्रपर 'मनोहर गोपाल' छपा था, पर मैं उन्हें नीलमणि गोपाल आदि नामोंसे याद करती थी।

मेरे जीवनमें अनेकों उतार-चढ़ाव आये। मुझे याद नहीं कि मैंने गोपालजीसे कुछ माँगा हो, पर मुझे हमेशा इस बातका अहसास रहता था कि गोपालजी मेरे हैं और सदा मेरे साथ हैं। हाँ, कोई भी नया काम शुरू करनेसे पहले (जिस कामको करते समय गलत हो जानेकी आशंका रहती थी) मैं उन्हें अवश्य याद करती थी।

अब मैं एक महत्त्वपूर्ण घटना लिखना चाहती हूँ, जो मेरे जीवनमें घटी है। बचपनसे ही मेरे सिरमें दर्दकी शिकायत रहती थी। सन् १९५३ ई० में शादी हो जानेके बाद सिरदर्द तेज होने लगा। सप्ताहमें एक-दो बार अवश्य ही मुझे तेज दर्द होता था। मैं सिरदर्दकी गोली ले लेती। फिर कुछ समय बाद वह ठीक हो जाता। कुछ वर्षों बाद मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि जब भी मुझे चाय पीनेमें देर हो जाती है, मुझे अवश्य ही सिरदर्द हो जाता है। सुबह सात बजेतक और शामको चार बजे मुझे चाय न मिले तो मेरी हालत खराब हो जाती थी। बादमें तो डॉक्टरने बताया कि माइग्रेन है। मुझे उलटियाँ होने लगतीं और सिर फट जायगा, ऐसा लगता। कई बार डॉक्टरोंके पास जाना पड़ता। उन्हीं दिनों मुझे विचार आता था कि हे भगवन्! तुमने मुझे चायका गुलाम बना दिया है। क्या मैं चायकी गुलामीसे मुक्ति नहीं पा सकती ? मेरे दो बच्चोंकी शादियाँ हो चुकी थीं। कुछ समय गाँवमें समाजसेवा करने जाती थी और कुछ समय श्रीमद्भागवत-कथा सुननेमें एवं पढ़नेमें लगाती थी। हम लोग मुरादाबादमें रहते थे। अबसे लगभग २० वर्ष पहलेकी बात है, मुरादाबादके पास अमरोहामें संतप्रवर श्रीडोंगरेजी महाराजकी भागवत-कथाका आयोजन हुआ। हमारे कुछ साथियोंने एक बस तय की, जो सात दिनतक सुबह रोज हमें अमरोहा कथामें ले जाती थी एवं शामको हम वापस आते थे।

कथाके बीचमें एक बार डोंगरेजी महाराजने कहा कि 'तुम संसारी लोग काम, क्रोध, लोभ, मोह क्या छोड़ोगे, तुम तो चाय, बीड़ी, सिगरेटतक नहीं छोड़ सकते।' सुनकर मुझे लगा कि यह मेरे लिये ही कहा गया है। संयोगकी बात है कि अगले ही वर्ष मुरादाबादमें भी कथा होगी, यह तय हुआ। मैं मनमें बराबर विचार करती रही कि यदि मेरी चाय आगामी कथा होनेतक किसी प्रकार छूट जाय तो मैं बिना चाय पिये डोंगरेजी महाराजकी कथा सुनूँ। १२ सितम्बरसे कथा होनी थी। ५ सितम्बरकी सुबह मैंने चाय नहीं पी, सोचा तबीयत खराब होगी तो हो जाय, आज चाय नहीं पियूँगी। उस दिन सारा दिन मैं इन्तजार करती रही, अब मुझे तेज सिरदर्द होगा, अब उलटियाँ शुरू होंगी, पर शाम चार बजेतक कुछ नहीं हुआ। फिर मैंने शामकी चाय भी नहीं पी और राततक मैं ठीक रही। अब तो मुझे लगने लगा कि बिना चाय पिये कथा सुन सकती हूँ और गोपालजीकी कृपासे ऐसा ही हुआ, मैंने कथा सुनी। शायद पाँच सितम्बर, सन् १९८९ ई० ही था, उसके बाद मैंने कभी चाय नहीं पी। आश्चर्यकी बात यह हुई कि चाय तो मेरी छूट ही गयी, साथ ही गोपालजीकी कृपासे तबसे मेरा माइग्रेन बिलकुल ठीक हो गया। सालमें एकाध बार किसी विशेष कारणसे मामूली सिरदर्द हो जाता है अन्यथा तो मैं ठीक ही हूँ।

जीवनमें दुःख-सुख तो आते-जाते रहते हैं, पर यदि यह विचार बना रहे कि हम उनकी शरणमें हैं, वे जो भी करेंगे, हमारे भलेके लिये ही होगा, तो जीवनकी राह सहज हो जाती है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

—श्रीमती माया गुप्ता

[प्रेषक—श्रीविनीतनारायणजी]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

विपन्नतामें भी सम्पन्नता

अभी कुछ दिन पूर्व होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) जिलेके सिवनी-मालवाके निकट नर्मदातटपर स्थित चाँदगढ़ आश्रम जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहीं नर्मदा-परिक्रमा कर रहे गुजरातके एक गृहस्थ संतने एक आपबीती घटना सुनायी, जिसमें एक अत्यन्त विपन्न व्यक्तिने उनके सहित आठ-दस परिक्रमा करनेवालोंका भावपूर्ण ढंगसे स्वागत किया था, जबकि एक सर्वविधसम्पन्न व्यक्तिने उन सबको रुकनेसे मना कर दिया था। वस्तुतः इस घटनासे यही प्रमाणित होता है कि सम्पन्नता और विपन्नता हृदयकी उदारतापर निर्भर करती है, न कि संसाधनोंपर। घटना इस प्रकार है—

नर्मदाजीकी परिक्रमा करनेवाले आठ-दस लोगोंकी मण्डली जा रही थी। प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त हो वे लगभग सात-आठ किलोमीटर चल चुके थे कि एक छोटा-सा गाँव दिखायी दिया। गाँवके प्रारम्भमें ही एक पक्का मकान दिखायी दिया, जिसमें एक छोटा-सा मन्दिर और प्रांगण था। मण्डलीकी इच्छा थी कि यहाँ विश्राम करें, भोजन-प्रसादी प्राप्त करें और फिर आगे बढ़ें, किंतु गृहस्वामीने वहाँ रुकनेकी आज्ञा नहीं दी। जब उनसे पूछा गया कि आगे कहीं विश्राम-स्थली है तो उन्होंने गाँवके अन्तमें एक पेड़की ओर इशारा किया। मण्डली जब उस स्थानपर पहुँची तो पासकी झोपड़ीसे एक व्यक्ति बाहर आया और सभीको प्रणाम किया और कहा कि 'मेरा धन्य भाग्य है, जो आप सब आये।' इस बीच मण्डलीके एक सदस्यने कहा कि क्या चायकी व्यवस्था हो सकती है? उस व्यक्तिने तुरंत अपने बालकको आवाज दी और कहा कि आठ-दस लोगोंकी चाय बनानेको अपनी माँसे कहो। बालक वापस लौटकर आया और कहा कि घरमें न शक्कर है और न ही चायकी पत्ती। उस व्यक्तिने अपने पुत्रसे कहा कि एक थैलेमें पाँच-छः किलो मटर भरो, जो आँगनमें सूख रहे हैं; उसे लेकर दुकानदारके पास जाओ और शक्कर, चायपत्ती लाओ तथा आठ-दस बिस्कुटके पैकेट भी ले आओ। पन्द्रह-बीस मिनटमें ही लोटेमें काली चाय आ गयी और हमें एक-एक पैकेट बिस्कुटका दिया गया। हम लोग यह अंदाजा लगा चुके थे कि उसके घरमें इतने व्यक्तियोंके लिये कप या गिलास नहीं हैं। अतः सबने चाय अपने-अपने गिलासमें लेकर पी और बिस्कुट खाये। उस व्यक्तिकी आँखोंमें जो श्रद्धाभाव था, उससे हम सभी अभिभूत थे। चाय पीनेके साथ सत्संग भी चल रहा था और वह व्यक्ति बड़े भक्तिभावसे हमारी बातें सुन रहा था। लगभग बारह बजे जब हम लोगोंने आगे जानेकी बात कही तो उस व्यक्तिने हाथ जोड़कर कहा कि आप सब लोग यहीं प्रसादी लें तो मुझपर बड़ा उपकार होगा। उसका प्रेम देखकर हम लोग रुक गये। उसने घर जाकर पत्नीको भोजन बनानेको कहा और खुद बाहर जाकर दोना-पत्तल बनाने हेतु पत्ते ले आया और दोना-पत्तल बनाने लगा। शायद घरमें पर्याप्त बर्तन नहीं रहे होंगे। भोजनमें उसने केवल चावल और मटरकी दाल बनवायी, जिसका स्वाद अमृतके समान था।

भोजनके पश्चात् जब वे घर गये तो हम सब लोगोंने दस-बीस रुपये करके अस्सी-सौ रुपये इकट्ठे किये और उस व्यक्ति और उसके बालकको बुलाकर कहा कि नर्मदा माँ तुमपर बहुत कृपा करें। हमारे आशीर्वादके स्वरूप यह छोटी-सी राशि बच्चेकी पुस्तक आदिपर खर्च करना। हमको विदा करते समय उसकी आँखोंमें आँसू थे और हमारा हृदय यह सोचकर भारी था कि माँ नर्मदाने इस भक्तको कैसी प्रेरणा दी कि अत्यन्त अभावग्रस्त होते हुए भी वह हमारी सहायता करनेको तत्पर हो गया। उस व्यक्तिके भाव-भक्तिके आगे लोगोंकी सम्पन्नता बौनी नजर आ रही थी। विपन्न होकर भी वह सम्राट् था।—**सुरेशचन्द्र पाराशर**

(२)

पैसा और मनुष्य

वे कच्छकी अबडासा तालुकाके रईस थे। बम्बईमें दाणाबन्दरपर उनकी अनाजकी दुकान थी। व्यापारके निमित्त उन्होंने ऋण ले रखा था। दो-ढाई लाख रुपया अनाजमें फँसा रहता। बाजारकी मन्दीके कारण एक बार उन्हें बहुत घाटा पड़ गया। समाचार धीरे-धीरे सर्वत्र फैल गया। ऋण देनेवाले एक साथ पैसा माँगने पहुँच गये; वे तो बड़े संकोचमें पड़ गये। फिर भी उन्होंने शान्तिपूर्वक सबसे कहा—'देखिये! व्यापार इस समय घाटेमें है, बहुत अधिक हानि हुई है। यदि आप संतोष करें तो थोड़े दिनोंमें लाभ होनेकी आशा है, तब सबको पैसा चुका दूँगा।'

लेकिन लेनेवालोंको विश्वास न था, जितने मिले, उतने वे सब पैसा लेनेकी शीघ्रतामें थे। पीछे न भी मिले, अभी जितने मिले वही ठीक। इसलिये वे एक-से-दो नहीं हुए। उन रईसने हिसाब किया और रुपये गिने, तब सबके समक्ष प्रार्थना रखी—यदि आपलोग रुपयेका आठ आना लेकर हिसाब चुकता कर दो तो मैं पैसा देनेको तैयार हूँ। हिसाब देखना हो तो देख सकते हैं। हिसाब देख लिया गया। सबकी सम्मतिसे रुपयेका आठ आना देकर खाते चुकते करा लिये गये। अन्तमें उनके समीप कुछ न बचा। व्यापार बन्दकर परिवारको लेकर वे देश चले गये। तीस वर्ष बीत गये। बातें भूल गयीं। उन ऋणदाताओंमेंसे कितने तो मर गये।

तत्पश्चात् उन्होंने अपने पुत्रको लेकर पुनः व्यापार प्रारम्भ किया। भाग्यने साथ दिया। जीवनके अन्तमें ७०-७५ वर्षकी अवस्थामें उनके धन्धेमें चमक आयी। लाख-डेढ़ लाख रुपया हो गया, परंतु उन्होंने अपने घरेलू खर्चोंमें कोई वृद्धि न की। उनके हृदयमें तो उन लोगोंका शेष ऋण चुभता रहता था। नियमानुसार तो कोई अँगुली उठा सकता नहीं था और बहुत-से तो इस बातको भूल भी चुके थे, परंतु उन्होंने कुछ निश्चित किया और लड़केको एकान्तमें बुलाकर कहा—'उन पुराने बही-खातोंको थोड़ा ध्यानसे देखो।'

लड़केने बही-खातोंको देखा और क्रुद्ध होकर बोला—'अब इनका क्या काम है?' पिताने कहा—'तू समझा नहीं, हमपर कर्ज है, उसीका हिसाब इसमें देखना है।'

परंतु ये खाते तो सब-के-सब चुकते किये हैं, सबके हस्ताक्षर हैं। अब पहलेका शेष ऋण देने लगें, तब तो फिर वैसी परिस्थिति हो जायगी; क्यों हम जान-बूझकर दुखी होनेका प्रयत्न करें?

परंतु वृद्धने अपने अन्तःकरणकी इच्छा पूर्ण करनेका निश्चय किया। लड़का घर छोड़कर कहीं चला गया। वृद्धने चिन्ता नहीं की।

एक-एक लेनदारको बुलाकर शेष रुपये देना प्रारम्भ किया। एक ओर देना समाप्त हुआ तो दूसरी ओर तिजोरी खाली हुई। उसने भगवान्का उपकार माना—'आपने मेरी लज्जा रख ली।' उस दिन उन्हें जो सुखकी नींद आयी, पहले कभी न आयी थी।

दूसरे दिन वृद्धने पूरा नगर ढूँढ़ा। लड़केका पता नहीं लगा। लड़केका पता लगानेके लिये उन्होंने समाचार-पत्रमें यह समाचार छपाया—

'चिरंजीव!·········अब तुम्हारा क्रोध शान्त हो गया होगा, भाग्यने साथ दिया है, सब ऋण दे दिया गया है। लाज रह गयी है। पुरुषार्थ करेंगे तो पर्वतोंको भी तोड़ डालेंगे। तुम शान्तिसे विचार करोगे तो तुम्हें लगेगा कि मैंने जो कुछ किया, वह ठीक किया है। इसलिये जो हो गया, उसे भूल जाओ और घर वापस आ जाओ। सबको चिन्ता रहती है, दुःख रहता है।'

और वास्तवमें तीसरे दिन लड़का आकर पिताके चरणोंमें पड़ गया—'पिताजी! आज संसार पैसेके लिये अन्धा हो रहा है। फिर आपने पैसेके रहनेपर भी जो उपेक्षावृत्ति दिखलायी है, वह अद्भुत है। ऐसे पिताका पुत्र होनेका मुझे गौरव है। मेरी भूलके लिये क्षमा करें।'

पिताने पुत्रके सिरपर हाथ रखा। उनकी आँखोंसे हर्ष और संतोषके आँसू निकल रहे थे।—**अखण्ड आनन्द**

(३)

धोबीकी ईमानदारी

बात मार्च, सन् २००६ ई० की है। हर वर्षकी भाँति इस वर्ष भी गुजरातसे 'मानवता सेठ' बसन्त पंचमीपर आयोजित पंचदिवसीय फूलडोल-महोत्सवमें भाग लेनेके लिये शाहपुरा (भीलवाड़ा) राजस्थान आये थे। यहाँ रामस्नेही-सम्प्रदायका विश्वविख्यात रामद्वारा स्थित है।

उक्त सेठके नौकरने जल्दबाजीमें सेठजीका कुर्ता-पाजामा, धोने एवं इस्त्री करनेके लिये ड्राईक्लीनर्सको दे दिये, किंतु कुर्तेसे सोनेके बटन एवं चैन निकालना भूल गया। अगले दिन प्रात:काल सेठने नौकरसे कुर्तेमें लगानेके लिये अपने बटन एवं चेन माँगी तो नौकरको याद आया कि वह तो ड्राईक्लीनर्सके यहाँ कुर्तेके संग दे आया। सेठजीको इसके विषयमें बताया और तुरंत ड्राईक्लीनर्सके यहाँ जानेकी अनुमति माँगी, किंतु सेठजीने अपने विश्वस्त नौकरको धैर्य बँधाते हुए कहा कि—

सूं ध्वै खरी कमाई ना वेला तो मिल जायेगा।
अटला माटे भागवाँ नीं जरूरत ना है॥

यह चेन-बटन तकरीबन एक तोला (१२ ग्राम) सोनेसे निर्मित थे, जिनकी वर्तमान लागत लगभग ३०००० रुपये (तीस हजार रुपये) है। दूसरे दिन ही सायंकालमें ड्राईक्लीनर्सवाले धोबीने कपड़ोंसहित सेठजीके ठहराववाले स्थानपर आकर चेन एवं बटन सेठजीको सुपुर्द करते हुए कहा कि भविष्यमें कपड़ोंकी अच्छी तरह छानबीनकर ही प्रेषित करनेकी कृपा करें, ताकि ऐसी भूल नहीं हो।

सेठजी धोबीकी ईमानदारीसे अभिभूत हो गये एवं प्रसन्न होकर उसे ५०० (पाँच सौ) रुपये ईमानदारीके पुरस्कारके रूपमें देने लगे, किंतु उसने (धोबीने) कहा कि मुझे तो आप सेवाका अवसर इसी तरह प्रदान करते रहें। बस, इतना ही हमारे लिये पर्याप्त है। यह रुपया पुरस्कार नहीं चाहिये। आज भी वे सेठजी हमारे सम्माननीय ग्राहक हैं। उक्त ड्राईक्लीनर्स मेरे पिताश्री हैं, जिनके ईमानदारीयुक्त जीवनकी छायामें पोषित मैं राजकीय सेवाके उच्च पदपर कार्यरत हूँ।—**रीता धोबी**

(४)

समाजके धनका उपयोग क्यों करूँ?

उत्तर वियतनामके नेता श्रीहो ची मिन्हका कथन था कि वही व्यक्ति समाजमें सम्मान प्राप्त कर सकता है, जिसकी कथनी करनी एक है। वे आन्दोलनका नेतृत्व करनेवालोंसे कहा करते थे—'समय एवं धनका सदुपयोग करना चाहिये। हमें समाज एवं देशके धनका दुरुपयोग कदापि नहीं करना चाहिये।'

आगे चलकर हो ची मिन्ह वियतनामके राष्ट्रपति बने। सरकारके उच्च अधिकारियोंने उनके लिये एक भव्य बंगला बनवानेकी तैयारी की। उन्होंने सरकारको सूचित किया कि वे जिस साधारण मकानमें रह रहे हैं, उसीमें पूर्ववत् रहते रहेंगे।

एक दिन कुछ विदेशी पत्रकार राष्ट्रपति हो ची मिन्हसे मिलने पहुँचे। उन्होंने उन्हें बाँस-लकड़ीसे बनाये गये साधारण मकानमें बैठे देखा तो वे चकित हो उठे। उनके कक्षमें साधारण कुर्सियाँ एवं एक मेज थी। तड़क-भड़कका नामोनिशान नहीं था।

अमेरिकी पत्रकारने उनसे कहा—'अब आप साधारण नेता नहीं, देशके राष्ट्रपति हैं। आपको इस महान् पदकी गरिमाके अनुरूप जीवन-यापन करना चाहिये।'

उन्होंने उत्तर दिया—'मैं बिना परिश्रमके प्राप्त धनका अपने लिये उपयोग अनैतिक मानता रहा हूँ। तमाम सम्पदाको राष्ट्रकी बताता रहा हूँ। सादगीका जीवन जीनेमें मुझे कोई असुविधा नहीं होती। फिर मैं राष्ट्र एवं समाजके धनका उपयोग क्यों करूँ?

पत्रकार एक राष्ट्रपतिके ये शब्द सुनकर हतप्रभ रह गया।—**शिवकुमार गोयल**

मनन करने योग्य

श्राद्ध और पिण्डदान अवश्य करें

(१)

श्रीमत् कुलानन्द ब्रह्मचारी महोदयने श्रीश्रीसद्गुरुसंग, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ९०, बँगला सम्वत् १२९७ ई० के श्रावणकी डायरीमें महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीके निम्नलिखित वृत्तान्तको उद्धृत किया है—'एक दिन कालीदहके पास यमुनाके किनारे पहुँचते ही एक प्रेत मेरे सामने आकर छटपटाने लगा। मैंने पूछा—'यों किसलिये कर रहे हैं?' उसने कहा—'प्रभु! बचाइये, बचाइये, अब यह क्लेश मुझसे सहा नहीं जाता। सैकड़ों-हजारों बिच्छू मुझे सदा काटते रहते हैं। यन्त्रणासे छटपटाता हुआ मैं दिन-रात दौड़ा करता हूँ। एक घड़ीके लिये भी मुझे शान्ति नहीं मिलती। आप मेरी रक्षा कीजिये।' मैंने उससे पूछा—'यह आपके किस पापका दण्ड है?' प्रेतने चिल्लाकर रोते हुए कहा—'प्रभु! यहाँ मैं एक मन्दिरका पुजारी था। भगवान्‌की सेवाके लिये मुझे जो कुछ धनादि मिलता, उसे सेवामें न लगाकर मैं भोग-विलासमें नष्ट कर देता और दुराचारमें प्रवृत्त रहता था। यही मेरा सबसे बड़ा अपराध है।' मैंने उससे पूछा—'आपके इस भोगकी शान्ति कैसे हो सकती है?' उसने कहा—'मेरा श्राद्ध नहीं हुआ। श्राद्ध होते ही मेरा यह क्लेश मिट जायगा। आप दया करके मेरे श्राद्धकी व्यवस्था करा दें।' मैंने फिर पूछा—'किस प्रकार व्यवस्था करें?' उसने कहा—'अपने श्राद्धके लिये मैंने डेढ़ हजार रुपये अपने भतीजेको सौंपे थे, परंतु उसने अबतक मेरा श्राद्ध नहीं किया। आप दया करके उसके पाससे वे रुपये मँगवा लें। उनमेंसे कुछ भगवान्‌की सेवामें लगा दें और शेष रुपयोंसे मेरे कल्याणके लिये श्राद्ध करवा दें।'

मैंने उस मन्दिरके पुजारीके पास जाकर उससे सारी बातें कहीं। फिर उस मृत पुजारीके भतीजेको सब बातें विस्तारपूर्वक बतलायी गयीं। पहले उसने यही सोच रखा था कि इन रुपयोंका किसीको पता नहीं है, कौन पूछेगा। जो कुछ हो, अन्तमें उसने रुपये दे दिये और विधिपूर्वक श्राद्ध-महोत्सव हो गया। इस व्यवस्थासे प्रेतकी यन्त्रणा मिट गयी।

(२)

महात्मा श्रीसंतदास बाबाजीने कहा था कि कई वर्षों पहलेकी बात है, कलकत्ता हाईकोर्टके एक सुप्रसिद्ध न्यायाधीश परलोकवासी हो गये थे। कहा जाता है कि वे जब जीवित थे, तब उनके भोजनमें प्रतिदिन दो मुर्गियोंकी आवश्यकता होती थी। उक्त न्यायाधीश महोदय मरकर प्रेत हुए और असह्य नरकयातना भोगने लगे। उस प्रेतात्माने सहायता पानेके लिये बहुत-से आत्मीय स्वजनोंके सामने प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिये, परंतु प्रेतात्माको देखते ही सब लोगोंके डर जानेके कारण वह किसीको अपनी दुःखगाथा नहीं सुना सके। अन्तमें एक धर्मप्राण सज्जन व्यक्तिके सामने प्रकट होकर उन्होंने अपनी क्लेश-कहानी सुनायी। प्रेतात्माने कहा—'मैं बड़े भारी क्लेशमें हूँ, मुझे मानो सैकड़ों बिच्छू एक साथ काट रहे हों—ऐसी असह्य यातना मैं भोग रहा हूँ। दारुण प्यासके कारण मेरे प्राण छटपटाते रहते हैं, पर मुझको पीनेके लिये जल नहीं दिया जाता, खून दिया जाता है। मेरे नामपर यदि कोई गयाजीमें पिण्ड दे दे तो मेरी यातना मिट सकती है।' उक्त सज्जन पुरुषने परलोकगत उन न्यायाधीश महोदयके नामसे गयाजीमें पिण्ड दिलवाये, बादमें ज्ञात हुआ कि उनकी यातना शान्त हो गयी।

यद्यपि वे अपने क्षेत्रमें न्यायमूर्ति एवं धर्माधीशके नामसे प्रसिद्ध थे तथापि यहाँके प्रतिष्ठित व्यक्ति होनेके कारण कोई परलोकमें नरक-भोगसे बच जायगा, ऐसा मानना सर्वथा भ्रम है। समस्त न्यायके अधिष्ठाता, सर्वान्तर्यामी, सर्वनियन्ता परमात्माका विधान ही सर्वोपरि है। उसकी दृष्टिमें बड़े-छोटे, धनी-निर्धन, पण्डित-मूर्ख आदि सभीके प्रति कोई भेदभाव नहीं है और उनके कर्मोंका परिणाम सर्वथा शुद्ध न्यायके अनुसार होता है तथा प्राणीका भावी जन्म या नरक-स्वर्गादिकी व्यवस्था भी उनके स्वकर्मोंके आधारपर ही होती है।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—श्रीदुर्गासप्तशतीके विभिन्न संस्करण

(शारदीय नवरात्र १३ अक्टूबर मंगलवारसे प्रारम्भ होगा)

कोड 1346, सानुवाद, मोटा टाइप

कोड 1281, सानुवाद, विशिष्ट संस्करण

कोड 1161, केवल हिन्दी

कोड 1567, मूल, मोटा

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1567	**मूल,** मोटा टाइप (बेड़िआ)	४५
876	**मूल,** गुटका	१५
1346	**सानुवाद,** मोटा टाइप	३५
1281	**सानुवाद** (वि० सं०)	५०
118	**सानुवाद,** सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी)	३०
489	सानुवाद, सजिल्द, गुजराती भी	४५
866	**केवल हिन्दी**	२०
1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	५०

दुर्गाचालीसा एवं विन्ध्येश्वरी-चालीसा (अनेक आकार-प्रकारमें)

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—शक्ति-उपासकोंके लिये कुछ विशिष्ट प्रकाशन

'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण'—[सचित्र, मूल श्लोक, हिन्दी-व्याख्यासहित](कोड 1897-1898) दो खण्डोंमें—इस महापुराणको (मूल श्लोक भाषा-टीकासहित)-दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया है। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹ ४००, **केवल हिन्दी (कोड 1793-1842)**—मूल्य ₹ २००, **संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (मोटा टाइप) केवल हिन्दी (कोड 1133)** मूल्य ₹ २४०, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु भी उपलब्ध।

महाभागवत [देवीपुराण] (कोड 1610) हिन्दी-अनुवादसहित—इस पुराणमें मुख्यरूपसे भगवतीके माहात्म्य एवं लीला-चरित्रका वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें मूल प्रकृतिके गंगा, पार्वती, सावित्री, लक्ष्मी, सरस्वती और तुलसीरूपमें की गयी विचित्र लीलाओंके रोचक आख्यान हैं। मूल्य ₹ १२०

देवीस्तोत्ररत्नाकर (कोड 1774) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें भगवती महाशक्तिके उपासकोंके लिये देवीके अनेक स्वरूपोंके उपासनार्थ चुने हुए विभिन्न स्तोत्रोंका अनुपम संकलन किया गया है। मूल्य ₹ ३५

शक्तिपीठ-दर्शन (कोड 2003) पुस्तकाकार—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवतीके ५१ शक्तिपीठोंके इतिहास और रहस्यका विस्तृत वर्णन है। मूल्य ₹२०

नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस' के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1389	**श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (वि०सं०)	६००
80	,, बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	५००
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	३००
81	,, ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	२४०
1402	,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)	१९०
1563	,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)	१४०
1436	,, मूलपाठ, बृहदाकार	२५०

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
82	**श्रीरामचरितमानस**—मझला साइज, सटीक, [बँगला, गुजराती, अंग्रेजी भी]	१२०
1617	,, मझला, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित	१३०
83	,, मूलपाठ, ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]	१२०
84	,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	७०
85	,, मूल, गुटका [गुजरातीमें भी]	४५
1544	,, मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण)	५०
1349	,, सुन्दरकाण्ड सटीक, मोटा टाइप, दो रंगमें	२५

मासिक 'कल्याण' kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

प्र० ति० २०-८-२०१५
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

कल्याण-'सेवा-अङ्क' अभी भी उपलब्ध

'कल्याण' के वर्तमान वर्षके विशेषाङ्क **'सेवा-अङ्क'** के ग्राहक अभी बनाये जा रहे हैं। ग्राहक बननेके इच्छुक महानुभाव निर्धारित रकम शीघ्र भिजवा देवें। वी. पी. पी. से भी मँगानेकी सुविधा है। आर्डर भेजते समय पूरा पता, पिन कोडसहित एवं मोबाइल नं० भी अवश्य भेजना चाहिये।

वार्षिक-शुल्क— ₹ २००, ₹ २२० (सजिल्द)। पञ्चवर्षीय-शुल्क— ₹ १०००, ₹ ११०० (सजिल्द)

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

रुक्मी श्रीकृष्णके साथ युद्ध करता है। भगवान्ने उसको पकड़ा है, रथके स्तम्भके साथ बाँध दिया है। मार्गमें श्रीकृष्ण-बलराम मिले हैं। बलरामजी महाराज महान् वीर हैं। जैसे वीर हैं, वैसे ही व्यवहारमें ... हो, तबतक दोनों भाइयोंमें प्रेम होत ... तने लोग तो फिर अलग होनेका वि ... है कि हम दोनों भाई साथमें ही र ...

रामायण, भ ... कुटुम्ब-पद्धति! महाभारतमें पाँच ... नोंकी कथा आती है, घर एक है। भ ... म रखो। जिसका हृदय विशाल है, जिसकी आँखमें प्रेम है, उसके घरमें झगड़ा नहीं होता है। लग्न करनेके बाद दोनों भाइयोंको एक घरमें रहना हो तो भाईसे भी ज्यादा भाभीमें प्रेम बताना चाहिये।

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

भागवत-नवनीत (कोड 2009)

(संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराजके द्वारा प्रवचनके रूपमें प्रस्तुत श्रीमद्भागवत-कथाओंका अद्भुत संकलन)

के एक पृष्ठके टाइप का नमूना, मूल्य ₹ १६०

(रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च ₹ ३० अतिरिक्त)

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०१६)-की सितम्बर/अक्टूबर माहमें उपलब्धि सम्भावित।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ₹ ७०
बँगला—विशिष्ट संस्करण (कोड 1489)— " बँगला-अनुवाद, मूल्य ₹ ७०
ओड़िआ—विशिष्ट संस्करण (कोड 1644)— " ओड़िआ-अनुवाद, मूल्य ₹ ७०
तेलुगु—विशिष्ट संस्करण (कोड 1714)— " तेलुगु-अनुवाद, मूल्य ₹ ७०
सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹ ५५
पॉकेट साइज— सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक, मूल्य ₹ ३०

gitapressbookshop.in से गीताप्रेस प्रकाशन online खरीदें।